नवनीत

ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट

काव्य | साहित्य | शिक्षा | संस्कृति | दर्शन

जनवरी – मार्च 2014, अंक 2 नंबर 7 – 9
(Vol 2. No. 7 – 9) | ISSN 2200 - 7644

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत् ।।

(सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें,
और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।)

वसुधैव कुटुम्बकम्
पूरी दुनिया एक ही परिवार है।

Bharatiya Vidya Bhavan
AUSTRALIA
www.bhavanaustralia.org

बहू की कहानी

● आनंद गहलोत

जब भारत में 'नववधू' शब्द गढ़ा गया तो ईरान में फ़ारसी में दूलहे के लिए शब्द गढ़ा 'नौशा' (नौशः). 'नौशा' 'नौशाह' का संक्षिप्त रूप है. 'नौशाह' का अर्थ है 'नया बादशाह'. 'दूलहा' शादी के समय 'बादशाह' से कम नहीं होता. जिन्हें नये बादशाह के साथ बराबरी अखरी उन्होंने 'नौशाह' का एक पर काट कर उसे बना दिया 'नौशा'. 'नौशाह' की जन्मकुंडली पर विचार करें तो शब्द के सितारों की ग्रहगति कहती है कि 'नौ' वैदिक भाषा के नव (नया) का समांतर या बदला हुआ रूप है. 'नव' से 20 वीं सदी में अपना नया चोला उत्तर भारत में 'नया' शब्द के रूप में ग्रहण किया. अंग्रेज़ी शब्द 'न्यू' तथा पूरे यूरोप में इससे मिलते जुलते 'न्यू' के समानार्थी शब्द वैदिक 'नव' के वंशज हैं.

'हिंदी-उर्दू के 'नौ' में 'नया' अर्थ में 'नव' के वंश की धमनियों का रक्त बहता है जैसे 'नौजवान' या 'नवयुवती' के 'नवयौवन' में इस प्राचीनतम शब्द की सदाबहार है; जो कभी पुरानी नहीं पड़ी.

'वृ' (अर्थ : वरण करना, चुनना, छांटना, खोज करना) धातु से बने 'वर' का अर्थ श्रेष्ठ, सुंदरतम, उत्तम, छांटा हुआ, बढ़िया है, लेकिन धीरे-धीरे यह शब्द 'विवाहार्थी', 'दूलहा' अर्थ में रूढ़ हो गया है. इसी कारण विवाह के अवसर पर जीवनसाथी के गले में डाली जानेवाली माला 'वरमाला' कहलाने लगी. 'वर' मराठी में 'नवरा' 'वधू' 'नवरी' रूप में हैं. नवरा-नवरी 'वर' से बने हैं या 'नववरक' 'नववरिका' से इस पर कुछ और खोज की गुंजाइश है.

मराठी की 'वरणें' (विवाह में स्वीकार करना) का मूल संस्कृत की 'वृ' धातु है. ईरान में अवेस्ता भाषा में 'वर' के लिए यही 'वर' शब्द है, जो लैटिन में 'र' 'ल' में बदल कर 'वोलो'/ 'वेलो' हो गया.

'वर' के चक्कर में बेचारी 'वधू' की चर्चा नहीं हुई. आधुनिक होते-होते 'वधू' का रूप हो गया 'बहू'. जर्मन भाषा की 'ब्रुधी' गॉथिक का 'ब्रूथ' और अंग्रेज़ी से पूर्व की वहां की ओल्ड सैक्सन भाषा के 'ब्रूड' अंग्रेज़ी के 'ब्राइड' की 'वधू' से रिश्तेदारी हो सकती है. पुराने रिश्तेदारों का पता लगाना भी आसान काम नहीं.

कोशकारों की दृष्टि से 'बहू है औरत शादी के दिन और शादी से पहले और बाद में भी कुछ दिन तक.' वे नहीं जानते कि 'बहू' की उम्र बहुत लम्बी है. कुछ सास-ससुर बेटे की पत्नी को अपने जीवन भर 'बहू' कहना जारी रखते हैं.

कुलपति उवाच

मज़बूत इमारत के लिए

कड़े बंधनों वाली जाति भेद की व्यवस्था भंग होती जा रही है. सामाजिक विलगाव की वृत्ति का गढ़ बनी हुई अस्पृश्यता भी चूर-चूर होती जा रही है. परंतु चातुर्वर्ण्य का जो मूल आधार है, उसका त्याग कर देने से तो हमारी अपार हानि हो सकती है. संस्कार के अंशों को अव्याहत चालू रखने के विषय में जन्म की अवहेलना करने का परिणाम यह होगा कि भारतीयों ने जो 'वंश परम्परागत' कुशलता प्राप्त की और जिसे अपनी एक विशेषता बना कर अब तक टिकाये रखा है, वह लुप्त हो जायगी. और यह भी कि सत्वगुण वाले मनुष्यों के हाथों में नेतृत्व की लगाम होनी चाहिए, और उनके प्रति पूज्यभाव रखना चाहिए.

साथ ही साथ एक सावचेती रखनी है. जन्मजात संस्कारों और सामाजिक वातावरण से सम्बद्ध जो गणनाएं हैं, उनसे जीवन के मुख्य, केंद्रवर्ती हेतु छिप जाएं या अंधकार में पड़ जाएं, यह भी ठीक नहीं है. मनुष्य, पूर्णत्व या संसिद्धि केवल स्वनर्मित नियमन और साधना-द्वारा ही प्राप्त कर सकता है. इस प्राप्ति के लिए, प्रत्येक का अंतिम रूप यही हो सकता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने देखते हुए सत्य का ही अनुसरण करे. इस सत्य की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब मनुष्य अपने 'स्वभाव-नियत' कर्मों को किसी भी प्रकार पूरा करे. समाज से सम्बद्ध कर्तव्यों को ऋण मान कर, उन्हें चुकाने का जो धर्म है, उसमें गर्भित रूप से, समाज की एक बरजोरी तभी सकारण और उचित समझी जा सकती है, जब समाज उसके अंगभूत व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति दे दे, जो उसकी नैतिक और आध्यात्मिक संसिद्धि के अनुकूल हो. साथ ही साथ समाज की इमारत ऐसी मज़बूत होनी चाहिए कि उसके सहारे व्यक्ति सुरक्षित रह सके, और इस इमारत की नींव ऐसी सुदृढ़ होनी चाहिए कि वह कैसे भी घोर झंझावातों के सामने अडिग खड़ी रह सके.

(कुलपति के. एम. मुनशी भारतीय विद्या भवन के संस्थापक थे)

आइए, मनुष्यता को समझें

यीशू के हाथों–पैरों में कीले ठोंककर जब उन्हें क्रॉस पर टांग दिया गया तो उन्होंने कहा था, ''हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना, यह नहीं जानते यह क्या कर रहे हैं''. क्षमा के सतरंगे इंद्रधनुष का एक सिरा यह है, दूसरा वह जहां रामधारी सिंह 'दिनकर' कहते हैं, ''क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल है''. वस्तुत: यह क्षमा की सीमाएं नहीं हैं. यह विस्तार है जो क्षमा को मानवीय उदारता के चरम शिखर तक ले जाता है. मनुष्य को देवत्व नहीं देता क्षमा करने का यह अधिकार, यह उसे सही अर्थों में मनुष्य बनाता है. किसी को दंड देना अथवा किसी से बदला लेना मुश्किल काम नहीं है. बदला तो जानवर भी लेते हैं और दंड आसुरी ताकत वाला कोई व्यक्ति भी दे सकता है, लेकिन बहुत मुश्किल काम होता है स्वयं को मनुष्य कहने वालों के लिए किसी को क्षमा करना. क्षमा करने का अर्थ है हम कथित अपराध करने वाले को न केवल कोई सज़ा नहीं देना चाहते हैं, बल्कि उसे सुधरने का एक मौका भी देना चाहते हैं. पर क्षमा का अर्थ एवं महत्त्व यहीं तक सीमित नहीं है. शेक्सपियर ने दया को दुहरे गुण वाला हथियार बताया था– दया के पात्र और दया करने वाले, दोनों को दया का लाभ मिलता है. क्षमा भी ऐसा ही अस्त्र है. क्षमा पाने वाला ही नहीं, क्षमा करने वाला भी इससे लाभान्वित होता है— क्षमा पाने वाले को सुधरने का मौका मिलता है और क्षमा करने वाले को अपने मनुष्य होने को सार्थक करने का एक अवसर. क्षमा करना आसान काम नहीं है, इसी तरह क्षमा मांगना भी आसान नहीं होता है. बहुत बड़ा नैतिक साहस चाहिए व्यक्ति में यदि वह ईमानदारी से क्षमा मांग रहा है. जैन धर्म में तो क्षमा मांगने को पर्व का रूप दे दिया गया है. क्षमा मांगना भी पुण्य है, क्षमा करना भी.

क्रिसमस वाले इस माह में यही क्षमा हमारी आवरण कथा का विषय है. गंगाप्रसाद विमल, डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित, हुकमचंद भारिल्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय आदि विद्वान लेखकों के माध्यम से हमने मानवीयता को परिभाषित करने वाले इस गुण को समझने का प्रयास किया है. बापू से जुड़ा एक संस्मरण क्षमा का एक अनूठा अध्याय हमारे सामने लाता है. इस अंक में बाबा आमटे के बारे में एक लम्बा लेख है. बाबा ने अपने कृतित्व से करुणा को साकार किया था. आइए, क्रिसमस की खुशियों के साथ मनुष्यता को समझने की एक कोशिश करें.

नवनीत हिंदी डाइजेस्ट (भवन हेडक्वार्टर द्वारा प्रकाशित)

भारतीय राष्ट्र गान

जन गण मन

अधिनायक जय हे

भारत भाग्यविधाता

पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा

द्राविड़ उत्कल बंगा

विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा

उच्छल जलधि तरंगा

तव शुभ नामे जागे

तव शुभ आशीष मांगे

गाहे तव जयगाथा

जन गण मंगलदायक जय हे

भारत भाग्यविधाता

जय हे, जय हे, जय हे

जय जय जय जय हे!

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

महान विचारों को हर दिशा से हमारे पास आने दो

विषय-सूची

लाइसैंस और साइलैंस 8
क़ानून से ऊपर आरुषि 9
रवींद्रनाथ टैगोर की महान कृतियाँ 11
अन्तिम प्यार 11
ईदगाह 12
मुनिया 16
Hindi and Urdu—The Twin Sisters 18
एकला चालो रे 25
मीरां बाई पदावली 27
जाओ कल्पित साथी मन के 29
तुलसी दास के दोहे 31
श्री गुरु ग्रंथ साहिब से 32
नारी 34
साहित्य लोक की प्रसिद्ध कहानियाँ 36
अमृतसर आ गया है 36
काबुलीवाला 40
शेर और किशमिश 47
एक छोटा-सा मजाक 48

भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया
निर्देशक मंडल

पदाधिकारी:

अध्यक्ष	सुरेन्द्रलाल मेहता
कार्यकारी सचिव	होमी नव्रोजी दस्तूर
प्रधान	शंकर धर
सचिव	श्रीधर कुमार कोंदेपुदी

अन्य निर्देशक:

कृष्ण कुमार गुप्ता, श्रीनिवासन वेंकटरमन, पल्लादम नारायणा सथानागोपाल, कल्पना श्रीराम, जगन्नाथन वीराराघवन, मोक्षा वत्स

अध्यक्ष: गंभीर वत्स ओ ऐ एम्

संरक्षक: महामहिम श्रीमती सुजाता सिंह (ऑस्ट्रेलिया में पूर्व भारत उच्चायुक्त), महामहिम प्रहत शुक्ला (ऑस्ट्रेलिया में पूर्व भारत उच्चायुक्त), महामहिम राजेंद्र सिंह राठौड़ (ऑस्ट्रेलिया में पूर्व भारत उच्चायुक्त)

मानद जीवन संरक्षक: महामहिम एम. गणपथी (ऑस्ट्रेलिया में पूर्व भारत कौंसुल जनरल और भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया के संस्थापक)

प्रकाशक व प्रबंध संपादक:
गंभीर वत्स ओ ऐ एम्
president@bhavanaustralia.org

संपादक :
कृष्ण कुमार गुप्ता

भाषा संपादक :
परवीन दहिया

विज्ञापन हेतु:
pr@bhavanaustralia.org

Bharatiya Vidya Bhavan Australia
Suite 100 / 515 Kent Street,
Sydney NSW 2000

यह जरुरी नहीं है कि नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट में योगदानकर्ताओं के विचार, नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट या संपादक के विचार हों। नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट किसी भी योगदान लेख और प्रस्तुत पत्र को संपादित करने का अधिकार सुरक्षित रखता है। *कॉपीराइट:* प्रस्तुत सभी विज्ञापन और मूल संपादकीय सामग्री भवन ऑस्ट्रेलिया की संपत्ति है और इन्हें कॉपीराइट के मालिक की लिखित अनुमति बिना पुन: पेश नहीं किया जा सकता।

नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट: अंक 2 नंबर 7-9, ISSN 2200 – 7644

Australian National Anthem

Australians all let us rejoice,
For we are young and free;

We've golden soil and wealth for toil;
Our home is girt by sea;

Our land abounds in nature's gifts
Of beauty rich and rare;

In history's page, let every stage
Advance Australia Fair.

In joyful strains then let us sing,
Advance Australia Fair.

Beneath our radiant Southern Cross
We'll toil with hearts and hands;

To make this Commonwealth of ours
Renowned of all the lands;

For those who've come across the seas
We've boundless plains to share;

With courage let us all combine
To Advance Australia Fair.

In joyful strains then let us sing,

लाइसैंस और साइलैंस

(नेताजी विकास चाहते हैं पर उनके आत्मीय कार्यकर्ता चाहते हैं कुछ और)

उन्होंने कहा चुनाव जीतने के बाद—

धन्यवाद! धन्यवाद! धन्यवाद!

अब देखना इलाके में मेरे प्रयास,

हर तरफ़ होगा विकास ही विकास।

राजा जानी! क्या चाहिए, पानी?

आवाज़ आई— नहीं, नहीं, नहीं।

—रातें भी कर दूंगा उजली।

बोलो क्या चाहिए, बिजली?

आवाज़ आई— नहीं, नहीं, नहीं।

—बोलो बोलो बेधड़क.... सड़क?'

आवाज़ आई— नहीं, नहीं, नहीं।

—मैं बढ़ा दूंगा इलाके की नॉलेज,

कितने स्कूल चाहिए, कितने कॉलिज?

आवाज़ आई— नहीं, नहीं, नहीं।

—तो क्या चाहिए भइया?

मेरे पास है सरकार का करोड़ों रुपइया!

कार्यकर्ता बोले—

न जल, न नल, न सड़क, न स्कूल,

शिक्षा है फिजूल!

नहीं चाहिए बिजली,

चीज चाहिए असली।

—बोलो तो सही मेरे यार।'

कार्यकर्ता एक सुर में चिल्लाए—

हथियार!

रिवाल्वरों के लाइसैंस चाहिए,

थाने में थानेदार की साइलैंस चाहिए,

जो करे वारदातों को अनदेखा,

और हम सबको एक-एक ठेका।

—ज़रूर! ज़रूर! ज़रूर!

लाइसैंस और साइलैंस दोनों मंज़ूर।

—अशोक चक्रधर

क़ानून से ऊपर आरुषि

—चौं रे चम्पू! कानून ते ऊपर कौन ऐ रे?

—क़ानून से ऊपर सूर्य की पहली किरण है, यानी 'आरुषि'। अंधकार चीरते हुए प्रकट हो जाती है क़ानून की किरण। अंधकार साढ़े पांच साल लंबा हो सकता है पर आरुषि उजाले की चाहत में बादलों को भेदते हुए, अंधेरे को चीरते हुए निकलने को छटपटाती है।

—अंधकार इत्तौ लंबौ चौं है जाय?

—कारण यह है कि क़ानून ताबूत और तबाही की नहीं, सबूत और गवाही की मानता है। तबाही चीख-चीख कर कहती है कि मैं हूं, मैं हूं, पर क़ानून ही उसे चुप कर देता है, हट, तेरी सुनता कौन है! ताबूत कुछ बोल नहीं सकता, तबाही धीरे-धीरे गूंगी होने लगती है। क़ानून के कान भी ज़रूरत से ज़्यादा धैर्य दिखाते हैं। ठहर-ठहर कर सुनते है। दोनों पक्ष चीखें, तो टल जाती हैं तारीखें। सिद्ध करो कि घर में चार लोग थे, न कि सात। किसने किया था घात? क्या था वारदातों का सिलसिला? जो नौकर भाग चुका था, उसका शव तुम्हारी छत पर कैसे मिला? सर्जिकल ब्लेड से सफ़ाई से गला काटा गया। तुम कहते हो कि डीएनए टेस्ट झूठा है क्योंकि लिफ़ाफ़ा काटा गया। दोनों का ख़ून हुआ, क्या ये तथ्य निगेटिव था? जी, दोनों का हुआ ख़ून एबी से लेकर वाईज़ैड तक पॉज़िटिव था। शराब की बोतल पर मृतका के रक्त की निशानी थी। क्या उसे क़त्ल के बाद शराब पिलानी थी? अपराध के शव पर अंधेरे का क़फ़न कब तक चढ़ा रहता चचा?

अगर आप मानते हैं कि वे निरपराध हैं, तो बच भी सकते है। सज़ा के बाद अभी तो अपील का समय है। ऊपर की अदालतें हैं। कुछ नए सबूत मिलें, नए तर्क मिलें,संदेह का लाभ मिले, तो बच सकते हैं।

—लल्ला अंधेरे की उमर बड़ी लम्बी होयौ करै आजकल्ल।

—हां, अपराधों के लिए अंधेरा बड़े काम की चीज़ है। दंडविहीनता की स्थिति अपराध को दुस्साहस में बदल देती है। शायर बशीर बदर ने कहा था, 'रात का इंतज़ार कौन करे, आजकल दिन में क्या नहीं होता'। अंधकार को बढ़ाने में एक अदृश्य शक्ति और है, जिसका नाम है काला चोर। अजी मैंने नहीं किया, काले चोर ने किया होगा। क़ानून उस अदृश्य काले चोर को पकड़ने में अपने लाल फ़ीते की ताक़त लगाता है। अंधेरे की दूसरी समर्थक शक्तियां भी क़ानून की हवा निकालती रहती हैं।

—कानूनन पै भरोसा है तोय?

—क्यों नहीं! मैंने तो लिखा था, 'जैसे कि इस देह में ख़ून है, वैसे ही जीवन में क़ानून है। छोटा बड़ा कोई, अनपढ़-पढ़ा कोई, सबको है एक समान ये। निर्धन-धनी कोई, बन्ना-बनी कोई, सब पर तनी है कमान ये। ये हो तो रहता है चैनो-अमन, इसकी वजह से ही सुक्कून है। जैसे कि इस देह में ख़ून है, वैसे ही जीवन में क़ानून है। सबकी सुरक्षा का, जीवन की रक्षा का, देता हुकूकों का ज्ञान ये। हर गांव रहता है, हर ठांव रहता है, रहता है दुनिया जहान ये। हमको बचाता है ये इस तरह, सर्दी में जैसेगरम ऊन है।

—राजेस-नूपुर कूं तौ सर्दी में पसीना आय गए, बीपी बढ़ि गयौ, कैसै बचिंगे?

—अगर आप मानते हैं कि वे निरपराध हैं, तो बच भी सकते है। सज़ा के बाद अभी तो अपील का समय है। ऊपर की अदालतें हैं। कुछ नए सबूत मिलें, नए तर्क मिलें,संदेह का लाभ मिले, तो बच सकते हैं। काश कि वे निरपराधी हों। देश के बच्चों का भरोसा तो नहीं टूटेगा कि माता-पिता कभी हत्यारे नहीं हो सकते। लेकिन अगर वेबेटी की प्राकृतिक किशोर कामनाओं-जिज्ञासाओं पर रीसे हों, क्रोध और आवेग की आंधी ने दानवी दांत पीसे हों, तो अब ये अगले फैसलों तक चक्की पीसें। क़ानून 'आरुषि' है, भोर की किरण। क़ानून 'तरुण' भी है, क्योंकि संविधान के ज़रिए स्वयं को नवीनीकृत करता रहता है। क़ानून अपने नए 'तेज' से नियमों को 'पाल' रहा है। देखा नहीं तरुण तेजपाल भी निस्तेज हो रहे हैं, बलात्कार की नई व्याख्याओं के बाद!

—तेरी कबता खतम है गई?

—आगे सुनो, 'जीने का रस्ता है, नियमों का बस्ता है, हर मुल्क का मानो प्रान है। कैसे चलाते हैं, कैसे बनाते हैं, इसके लिए संविधान है। ये संविधान होता है क्या? 'क़ानूनों का भी ये क़ानून है।' संविधान सबको न्याय की गारंटी देता है।

—न्याय-फ्याय, सब कहिबे की बात ऐं रे! सबकूं न्याय मिलै कहां ऐ?

—आप भी ठीक कह रहे हैं। दिक्कत हमें, आती है तब, हो जाता क़ानून का ख़ून है।

—अशोक चक्रधर, उपाध्यक्ष, हिन्दी अकादमी, दिल्ली सरकार एवं उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, यूट्यूब पर 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' के बारे में इस लिंक पर जाएं:
http://www.youtube.com/watch?v=BlK4lk_XiJM

अन्तिम प्यार

नरेन्द्र अब तक मौन खड़ा था, अब किसी प्रकार आगे आकर बोला-हां कहता हूं, मेरी यही सम्मति है।'

योगेश बाबू ने मुंह बनाकर कहा- बड़े सम्मति देने वाले आये। छोटे मुंह बड़ी बात। अभी कल का छोकरा और इतनी बड़ी-बड़ी बातें।

मनमोहन बाबू ने कहा-योगेश बाबू जाने दीजिए, नरेन्द्र अभी बच्चा है, और बात भी साधारण है। इस पर वाद-विवाद की क्या आवश्यकता है?

योगेश बाबू उसी तरह आवेश में बोले-बच्चा है। नरेन्द्र बच्चा है। जिसके मुंह पर इतनी बड़ी-बड़ी मूंछें हों, वह यदि बच्चा है तो बूढ़ा क्या होगा? मनमोहन बाबू! आप क्या कहते हैं?

एक विद्यार्थी ने कहा-महाशय, अभी जरा देर पहले तो आपने उसे कल का छोकरा बताया था।

योगेश बाबू का मुख क्रोध से लाल हो गया, बोले-कब कहा था?

अभी इससे ज़रा देर पहले।'

झूठ! बिल्कुल झूठ!! जिसकी इतनी बड़ी-बड़ी मूंछें हैं उसे छोकरा कहूं, असम्भव है। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि मैं बिल्कुल मूर्ख हूं।

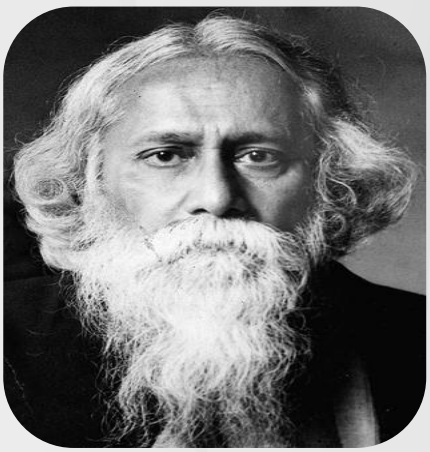

सब लड़के एक स्वर से बोले-नहीं, महाशय! ऐसी बात हम भूलकर भी जिह्ना पर नहीं ला सकते।

मनमोहन बाबू किसी प्रकार हंसी को रोककर बोले- चुप-चुप! गोलमाल न करो।

योगेश बाबू ने कहा- हां नरेन्द्र! तुम यह कहते हो कि बंग-प्रान्त में तुम्हारी टक्कर का कोई चित्रकार नहीं है।

नरेन्द्र ने कहा-आपने कैसे जाना?

तुम्हारे मित्रों ने कहा।

मैं यह नहीं कहता। तब भी इतना अवश्य कहूंगा कि मेरी तरह हृदय-रक्त पीकर बंगाल में कोई चित्र नहीं बनाता।

इसका प्रमाण?

नरेन्द्र ने आवेशमय स्वर में कहा- प्रमाण की क्या आवश्यकता है? मेरा अपना यही विचार है। *(जारी ...)*

नोबेल पुरस्कार प्राप्त कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य, शिक्षा, संगीत, कला, रंगमंच और शिक्षा के क्षेत्र में अपनी अनूठी प्रतिभा का परिचय दिया। अपने मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण वह सही मायनों में विश्वकवि थे। टैगोर दुनिया के संभवत: एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं को दो देशों ने अपना राष्ट्रगान बनाया। बचपन से कुशाग्र बुद्धि के रवींद्रनाथ ने देश और विदेशी साहित्य, दर्शन, संस्कृति आदि को अपने अंदर समाहित कर लिया था और वह मानवता को विशेष महत्व देते थे। इसकी झलक उनकी रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपूर्व योगदान दिया और उनकी रचना गीतांजलि के लिए उन्हें साहित्य के नोबल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। गुरुदेव सही मायनों में विश्वकवि होने की पूरी योग्यता रखते हैं।

साभार: http://www.hindisamay.com/

अलग्योझा

आखिर एक दिन पन्ना ने जिद करके कहा -तो तुम न लाओगे?

'कह दिया कि अभी कोई जल्दी नहीं।'

'तुम्हारे लिए जल्दी न होगी, मेरे लिए तो जल्दी है। मैं आज आदमी भेजती हूँ।'

'पछताओगी काकी, उसका मिजाज अच्छा नहीं है।'

'तुम्हारी बला से। जब मैं उससे बोलूँगी ही नहीं, तो क्या हवा से लड़ेगी? रोटियाँ तो बना लेगी। मुझसे भीतर-बाहर का सारा काम नहीं होता, मैं आज बुलाये लेती हूँ।'

'बुलाना चाहती हो, बुला लो; मगर फिर यह न कहना कि यह मेहरिया को ठीक नहीं करता, उसका गुलाम हो गया।'

'न कहूँगी, जाकर दो साड़ियाँ और मिठाई ले आ।'

तीसरे दिन मुलिया मैके से आ गयी। दरवाजे पर नगाड़े बजे, शहनाइयों की मधुर ध्वनि आकाश में गूँजने लगी। मुँह-दिखावे की रस्म अदा हुई। वह इस मरुभूमि में निर्मल जलधारा थी। गेहुँआ रंग था, बड़ी-बड़ी नोकीली पलकें, कपोलों पर हल्की सुर्खी, आँखों में प्रबल आकर्षण। रग्घू उसे देखते ही मंत्र-मुग्ध हो गया।

प्रात:काल पानी का घड़ा लेकर चलती, तब उसका गेहुँआ रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुंदन हो जाता, मानों उषा अपनी सारी सुगंध, सारा विकास और उन्माद लिये मुस्कराती चली जाती हो।

मुलिया मैके से ही जली-भुनी आयी थी। मेरा शौहर छाती फाड़कर काम करे, और पन्ना रानी बनी बैठी रहें, उसके लड़के रईसजादे बने घूमें। मुलिया से यह बरदाश्त न होगा। वह किसी की गुलामी न करेगी। अपने लड़के तो अपने होते ही नहीं, भाई किसके होते हैं? जब तक पर नहीं निकलते हैं, रग्घू को घेरे हुए हैं। ज्यों ही जरा सयाने हुए, पर झाड़कर निकल जायेंगे, बात भी न पूछेंगे।

एक दिन उसने रग्घू से कहा— तुम्हें इस तरह गुलामी करनी हो, तो करो, मुझसे न होगी।

रग्घू— तो फिर क्या करुँ, तू ही बता? लड़के तो अभी घर का काम करने लायक भी नहीं हैं।

मुलिया— लड़के रावत के हैं, कुछ तुम्हारे नहीं हैं। यही पन्ना है, जो तुम्हें दाने-दाने को तरसाती थी। सब सुन चुकी हूँ। मैं लौंडी बनकर न रहूँगी। रुपये-पैसे का मुझे हिसाब नहीं मिलता। न जाने तुम क्या लाते हो और वह क्या करती है। तुम समझते हो, रुपये घर ही में तो हैं: मगर देख लेना, तुम्हें जो एक फूटी कौड़ी भी मिले।

रग्घू— रुपये-पैसे तेरे हाथ में देने लगूँ तो दुनिया क्या कहेगी, यह तो सोच।

मुलिया— दुनिया जो चाहे, कहे। दुनिया के हाथों बिकी नहीं हूँ। देख लेना, भाड़ लीपकर हाथ काला ही रहेगा। फिर तुम अपने भाइयों के लिए मरो, मै क्यों मरुँ?

रग्घू ने कुछ जवाब न दिया। उसे जिस बात का भय था, वह इतनी जल्द सिर आ पड़ी। अब अगर उसने बहुत तत्थो-थंभो किया, तो साल-छ:महीने और काम चलेगा। बस, आगे यह डोंगा चलता नजर नहीं आता। बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी?

एक दिन पन्ना ने महुए का सुखावन डाला। बरसात शुरु हो गयी थी। बखार में अनाज गीला हो रहा था। मुलिया से बोली- बहू, जरा देखती रहना, मैं तालाब से नहा आऊँ?

मुलिया ने लापरवाही से कहा-मुझे नींद आ रही है, तुम बैठकर देखो। एक दिन न नहाओगी तो क्या होगा?

पन्ना ने साड़ी उतारकर रख दी, नहाने न गयी। मुलिया का वार खाली गया।

कई दिन के बाद एक शाम को पन्ना धान रोपकर लौटी, अंधेरा हो गया था। दिन-भर की भूखी थी। आशा थी, बहू ने रोटी बना रखी होगी, मगर देखा तो यहाँ चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ था, और बच्चे मारे भूख के तड़प रहे थे। पन्ना ने आहिस्ते से पूछा- आज अभी चूल्हा नहीं जला?

केदार ने कहा— आज दोपहर को भी चूल्हा नहीं जला काकी! भाभी ने कुछ बनाया ही नहीं।

पन्ना— तो तुम लोगों ने खाया क्या?

केदार— कुछ नहीं, रात की रोटियाँ थीं, खुन्नू और लछमन ने खायीं। मैंने सत्तू खा लिया।

पन्ना— और बहू?

केदार— वह पड़ी सो रही है, कुछ नहीं खाया।

पन्ना ने उसी वक्त चूल्हा जलाया और खाना बनाने बैठ गयी। आटा गूँथती थी और रोती थी। क्या नसीब है? दिन-भर खेत में जली, घर आयी तो चूल्हे के सामने जलना पड़ा।

कई दिन के बाद एक शाम को पन्ना धान रोपकर लौटी, अंधेरा हो गया था। दिन-भर की भूखी थी। आशा थी, बहू ने रोटी बना रखी होगी, मगर देखा तो यहाँ चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ था, और बच्चे मारे भूख के तड़प रहे थे। पन्ना ने आहिस्ते से पूछा- आज अभी चूल्हा नहीं जला?

केदार का चौदहवाँ साल था। भाभी के रंग-ढंग देखकर सारी स्थित समझ रहा था। बोला— काकी, भाभी अब तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती।

पन्ना ने चौंककर पूछा— क्या कुछ कहती थी?

केदार— कहती कुछ नहीं थी मगर है उसके मन में यही बात। फिर तुम क्यों नहीं उसे छोड़ देतीं? जैसे चाहे रहे, हमारा भी भगवान है।

पन्ना ने दाँतों से जीभ दबाकर कहा— चुप, मेरे सामने ऐसी बात भूलकर भी न कहना। रग्घू तुम्हारा भाई नहीं, तुम्हारा बाप है। मुलिया से कभी बोलोगे तो समझ लेना, जहर खा लूँगी।

दशहरे का त्योहार आया। इस गाँव से कोस-भर एक पुरवे में मेला लगता था। गाँव के सब लड़के मेला देखने चले। पन्ना भी लड़कों के साथ चलने को तैयार हुई; मगर पैसे कहाँ से आयें? कुंजी तो मुलिया के पास थी।

रग्घू ने आकर मुलिया से कहा— लड़के मेले जा रहे हैं, सबों को दो-दो पैसे दे दो।

मुलिया ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा— पैसे घर में नहीं हैं।

रग्घू— अभी तो तेलहन बिका था, क्या इतनी जल्दी रुपये उठ गये?

मुलिया— हाँ, उठ गये?

रग्घू— कहाँ उठ गये? जरा सुनूँ, आज त्योहार के दिन लड़के मेला देखने न जायेंगे?

मुलिया— अपनी काकी से कहो, पैसे निकालें, गाड़कर क्या करेंगी?

खूँटी पर कुंजी लटक रही थी।रग्घू ने कुंजी उतारी और चाहा कि संदूक खोले कि मुलिया ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली— कुंजी मुझे दे दो, नहीं तो ठीक न होगा। खाने- पहनने को भी चाहिए, कागज-किताब को भी चाहिए, उस पर मेला देखने को भी चाहिए। हमारी कमाई इसलिए नहीं है कि दूसरे खायें और मूँछों पर ताव दें।

पन्ना ने रग्घू से कहा— भइया, पैसे क्या होंगे! लड़के मेला देखने न जायँगे।

रग्घू ने झिड़ककर कहा— मेला देखने क्यों न जायँगे? सारा गाँव जा रहा है। हमारे ही लड़के न जायँगे?

यह कहकर रग्घू ने अपना हाथ छुड़ा लिया और पैसे निकालकर लड़कों को दे दिये; मगर कुंजी जब मुलिया को देने लगा, तब उसने उसे आँगन में फेंक दिया और मुँह लपेटकर लेट गयी! लड़के मेला देखने न गये।

इसके बाद दो दिन गुजर गये। मुलिया ने कुछ नहीं खाया और पन्ना भी भूखी रही। रग्घू कभी इसे मनाता, कभी उसे;पर न यह उठती, न वह। आखिर रग्घू ने हैरान होकर मुलिया से पूछा— कुछ मुँह से तो कह, चाहती क्या है?

मुलिया ने धरती को सम्बोधित करके कहा— मैं कुछ नहीं चाहती, मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रग्घू— अच्छा उठ, बना-खा। पहुँचा दूँगा।

मुलिया ने रग्घू की ओर आँखें उठायी। रग्घू उसकी सूरत देखकर डर गया। वह माधुर्य, वह मोहकता, वह लावण्य गायब हो गया था। दाँत निकल आये थे, आँखें फट गयी थीं और नथुने फड़क रहे थे। अंगारे की-सी लाल आँखों से देखकर बोली— अच्छा, तो काकी ने यह सलाह दी है, यह मंत्र पढ़ाया है? तो यहाँ ऐसी कच्ची नहीं हूँ। तुम दोनों की छाती पर मूँग दलूँगी। हो किस फेर में?

रग्घू— अच्छा, तो मूँग ही दल लेना। कुछ खा-पी लेगी, तभी तो मूँग दल सकेगी।

मुलिया— अब तो तभी मुँह में पानी डालूँगी, जब घर अलग हो जायगा। बहुत झेल चुकी, अब नहीं झेला जाता।

रग्घू सन्नाटे में आ गया। एक मिनट तक उसके मुँह से आवाज ही न निकली। अलग होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। उसने गाँव में दो-चार परिवारों को अलग होते देखा था। वह खूब जानता था, रोटी के साथ लोगों के हृदय भी अलग हो जाते हैं। अपने हमेशा के लिए गैर हो जाते हैं। फिर उनमें वही नाता रह जाता है, जो गाँव के और आदमियों में। रग्घू ने मन में ठान लिया था कि इस विपत्ति को घर में न आने दूँगा; मगर होनहार के सामने उसकी एक न चली। आह! मेरे मुँह में कालिख लगेगी, दुनिया यही कहेगी कि बाप के मर जाने पर दस साल भी एक में निबाह न हो सका। फिर किससे अलग हो जाऊँ? जिनको गोद में खिलाया, जिनको बच्चों की तरह पाला, जिनके लिए तरह-तरह के कष्ट झेले, उन्हीं से अलग हो जाऊँ? अपने प्यारों को घर से निकाल बाहर करुँ? उसका गला फँस गया। काँपते हुए स्वर में बोला— तू क्या चाहती है कि मैं अपने भाइयों से अलग हो जाऊँ? भला सोच तो, कहीं मुँह दिखाने लायक रहूँगा?

मुलिया— तो मेरा इन लोगों के साथ निबाह न होगा।

रग्घू— तो तू अलग हो जा। मुझे अपने साथ क्यों घसीटती है?

मुलिया— तो मुझे क्या तुम्हारे घर में मिठाई मिलती है? मेरे लिए क्या संसार में जगह नहीं है?

रग्घू— तेरी जैसी मर्जी, जहाँ चाहे रह। मैं अपने घर वालों से अलग नहीं हो सकता। जिस दिन इस घर में दो चूल्हे जलेंगे, उस दिन मेरे कलेजे के दो टुकड़े हो जायँगे। मैं यह चोट नहीं सह सकता। तुझे जो तकलीफ हो, वह मैं दूर कर सकता हूँ। माल-असबाब की मालकिन तू है ही, अनाज-पानी तेरे ही हाथ है, अब रह क्या गया है? अगर कुछ काम-धंधा करना नहीं चाहती, मत कर। भगवान ने मुझे समाई दी होती, तो मैं तुझे तिनका तक उठाने न देता। तेरे यह सुकुमार हाथ-पाँव मेहनत-मजदूरी करने के लिए बनाये ही नहीं गये हैं; मगर क्या करुँ अपना कुछ बस ही नहीं है। फिर भी तेरा जी कोई काम करने को न चाहे, मत कर; मगर मुझसे अलग होने को न कह, तेरे पैरों पड़ता हूँ।

मुलिया ने सिर से आँचल खिसकाया और जरा समीप आकर बोली— मैं काम करने से नहीं डरती, न बैठे-बैठे खाना चाहती हूँ; मगर मुझसे किसी की धौंस नहीं सही जाती। तुम्हारी ही काकी घर का काम-काज करती हैं,

तो अपने लिए करती हैं, अपने बाल-बच्चों के लिए करती हैं। मुझ पर कुछ एहसान नहीं करतीं, फिर मुझ पर धौंस क्यों जमाती हैं? उन्हें अपने बच्चे प्यारे होंगे, मुझे तो तुम्हारा आसरा है। मैं अपनी आँखों से यह नहीं देख सकती कि सारा घर तो चैन करे, जरा-जरा-से बच्चे तो दूध पीयें, और जिसके बल-बूते पर गृहस्थी बनी हुई है, वह मट्ठे को तरसे। कोई उसका पूछनेवाला न हो। जरा अपना मुँह तो देखो, कैसी सूरत निकल आयी है। औरों के तो चार बरस में अपने पट्ठे तैयार हो जायेंगे। तुम तो दस साल में खाट पर पड़ जाओगे। बैठ जाओ, खड़े क्यों हो? क्या मारकर भागोगे? मैं तुम्हें जबरदस्ती न बाँध लूँगी, या मालकिन का हुक्म नहीं है? सच कहूँ, तुम बड़े कठ-कलेजी हो। मैं जानती, ऐसे निर्मोहिए से पाला पड़ेगा, तो इस घर में भूल से न आती। आती भी तो मन न लगाती, मगर अब तो मन तुमसे लग गया। घर भी जाऊँ, तो मन यहाँ ही रहेगा और तुम जो हो, मेरी बात नहीं पूछते।

मुलिया की ये रसीली बातें रग्घू पर कोई असर न डाल सकीं। वह उसी रुखाई से बोला— मुलिया, मुझसे यह न होगा। अलग होने का ध्यान करते ही मेरा मन न जाने कैसा हो जाता है। यह चोट मुझ से न सही जायगी।

मुलिया ने परिहास करके कहा— तो चूड़ियाँ पहनकर अन्दर बैठो न! लाओ मैं मूँछें लगा लूँ। मैं तो समझती थी कि तुममें भी कुछ कस-बल है। अब देखती हूँ, तो निरे मिट्टी के लोंदे हो।

पन्ना दालान में खड़ी दोनों की बातचीत सुन रही थी। अब उससे न रहा गया। सामने आकर रग्घू से बोली— जब वह अलग होने पर तुली हुई है, फिर तुम क्यों उसे जबरदस्ती मिलाये रखना चाहते हो? तुम उसे लेकर रहो, हमारे भगवान मालिक हैं।जब महतो मर गये थे,और कहीं पत्ती की भी छाँह न थी, जब उस वक्त भगवान ने निबाह दिया, तो अब क्या डर? अब तो भगवान की दया से तीनों लड़के सयाने हो गये हैं, अब कोई चिन्ता नहीं।

रग्घू ने आँसू-भरी आँखों से पन्ना को देखकर कहा— काकी, तू भी पागल हो गयी है क्या? जानती नहीं, दो रोटियाँ होते ही दो मन हो जाते हैं।

पन्ना— जब वह मानती ही नहीं, तब तुम क्या करोगे? भगवान की मरजी होगी, तो कोई क्या करेगा? परालब्ध में जितने दिन एक साथ रहना लिखा था, उतने दिन रहे। अब उसकी यही मरजी है, तो यही सही। तुमने मेरे बाल-बच्चों के लिए जो कुछ किया, वह भूल नहीं सकती। तुमने इनके सिर हाथ न रखा होता, तो आज इनकी न जाने क्या गति होती, न जाने किसके द्वार पर ठोकरें खाते होते, न जाने कहाँ-कहाँ भीख माँगते फिरते। तुम्हारा जस मरते दम तक गाऊँगी। अगर मेरी खाल तुम्हारे जूते बनाने के काम आये, तो खुशी से दे दूँ। चाहे तुमसे अलग हो जाऊँ, पर जिस घड़ी पुकारोगे, कुत्ते की तरह दौड़ी आऊँगी। यह भूलकर भी न सोचना कि तुमसे अलग होकर मैं तुम्हारा बुरा चेतूँगी। जिस दिन तुम्हारा अनभल मेरे मन में आएगा, उसी दिन विष खाकर मर जाऊँगी। भगवान करे, तुम दूधों नहाओं, पूतों फलों! मरते दम तक यही असीस मेरे रोएँ-रोएँ से निकलती रहेगी और अगर लड़के भी अपने बाप के हैं। तो मरते दम तक तुम्हारा पोस मानेंगे।

यह कहकर पन्ना रोती हुई वहाँ से चली गयी। रग्घू वहीं मूर्ति की तरह बैठा रहा। आसमान की ओर टकटकी लगी थी और आँखों से आँसू बह रहे थे। *(जारी ...)*

मुंशी प्रेमचंद (31 जुलाई, 1880 - 8 अक्टूबर, 1936) भारत के उपन्यास सम्राट माने जाते हैं । प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। वे एक सफल लेखक, देशभक्त नागरिक, कुशल वक्ता, ज़िम्मेदार संपादक और संवेदनशील रचनाकार थे। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में जब हिन्दी में काम करने की तकनीकी सुविधाएँ नहीं थीं फिर भी इतना काम करने वाला लेखक उनके सिवा कोई दूसरा नहीं हुआ। प्रेमचंद की रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। प्रेमचन्द महान साहित्यकार के साथ-साथ एक महान दार्शनिक भी थे। गोदान, ग़बन, कर्मभूमि, कायाकल्प, निर्मला उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। साभार: *http://premchand.kahaani.org*, चित्र: http://www.munsipremchand.iitk.ac.in

मुनिया

मुनिया तू भले ही इस जन्म की गीता है
किन्तु पूर्व जन्म के राम राज्य की सीता है
जिसके मनोबल व त्याग ने राम को ही नहीं
अश्वमेध यज्ञ को भी जीता है
वो मर्यादा किसकी थी?
राम राज्य की, मर्यादा पुरुषोत्तम की
या गर्भवती सूर्यवंशी कुलवधू की?
वह मर्यादा तेरी थी
तू ही रामराज्य की निर्वासित पुनीता है
...
मुनिया तू लक्ष्मी ही नहीं जीवन का केन्द्रित बिंदु है
जन्म जन्मान्तरों से, युग युगान्तरों से, जीवन का सार और सिन्धु है
सूर्यवंशी कुल का सूर्योदय हुआ था तेरे मान से
और उसीका सूर्यास्त हुआ तेरे अपमान से
अवध में अब भी कोई दीप नहीं जलता है
कलह-कलेश व अमानुषता का बीज आज भी वहां पलता है
आजा दिव्य मुनिया मेरे बाहुपाश में
तू जान्हवी सी पवित्र बिन सुहाग ही परिणीता है
....
तू राम की परीक्षाओं का दयापात्र नहीं है
पति ही जीवन का लक्ष्य मात्र नहीं है
तेरे ही सृजन की चारों ओर छाया है
लव और कुश का जीवन एक प्रज्वलित माया है
राम, रावण और लक्ष्मण की रेखाओं से परे
तेरा अस्तित्व, तेरा गौरव, तेरी काया है
ओ मुनिया, ओ धवल चंद्रिके
तू राम की ही नहीं, कृष्ण की भी गीता है
....

तेरी ही तपन ने लंका को जलाया है, तेरी ही सुरभि ने उपवन को सजाया है
तू ही सूर्य है, तू ही ज्योति है, तू ही चंद्रमा की सटीक है
तू ही निष्ठा है, तू ही संकल्प है तू ही भक्ति की प्रतीक है
जीवन संघर्ष की चुनौती ने तेरे आंसुओं को नहीं मनोबल को जगाया है
तेरी मेंहदी को पश्चिम के सूर्यास्त नहीं, पूर्व के सूर्योदय ने सजाया है
ओ मेरी भव्य दिव्य मुनिया तू इस लोक की नहीं देव लोक की गृहीता है

...

मुनिया तू पराधीन नहीं, पराधीनता के दुर्भाग्य की द्योतक है
तू तो आशाओं की मालाओं में गुंथी, जीवन स्फूर्ति की स्त्रोतक है
जीवन एक उलझती पहेली है जिसमें क्षण भर का साथ और सहेली है
राम तेरे प्रेम से विमुख नहीं, वे तो भटके हुए बहेली हैं
कैकेयी के प्राण से यदि राम राज्य विनाशित है
तो तेरे संकल्प से ही भारत देश प्रकाशित है
अब उठ मुनिया बहुत हो चुका, तू तो जग प्रांगढ की संगृहीता है

....

कब से बैठी हूँ कि देखूं तेरा निर्दोष चहकता उन्मुक्त बचपन
तेरी लजीली, झुकती हुई चितवन में बंधा सशक्त यौवन

जो जब किसी राम की बांहों में पिघल जाता है
तो उसके मन उपवन में लक्ष्मी की जगह पाता है
हाँ मैं बैठी हूँ कि देखूं तेरा सुरभित आँगन
जिसका हर पुष्प तेरे श्रम की गवाही देगा
जिसकी हर भोर भरेगी तेरी रीती गगरी,
जिसका हर अंश तुझे हंसके दुहाई देगा
अब तो मेरे जाने का और तेरे आने का समय आया है
मुनिया बस तू ही इस नवयुग की रमणीका है

....

-**डाक्टर शैलजा चतुर्वेदी** अध्यक्ष, ऑस्ट्रेलियन इंडियन मेडिकल ग्रेजुएट एसोसिएशन और एक सलाहकार मनोचिकित्सक

Hindi and Urdu—The Twin Sisters

Urdu/Hindi, the *lingua franca* of Indo-Pakistani people written in Arabic Persian Script is a combination of two separate scripts and names Hindi in Deva Nagari and Urdu in Arabic. Urdu's history is enmeshed with religious terms like *Indira, Mitra, Siva, Allah, Rab.* These are shared by Muslims, Hindus, Jews, Christians. Urdu is amalgamated with Mesopotamia's rich vocabulary and grammar shared among Arabic, Sanskrit, Dravidian and Persian.

The languages have divided men into Hindus, Muslims etc but can even reunite them into a common heritage of cultures, religious ideas, sciences and languages. Both Urdu and Hindi have been the assimilation of thousands of Arabic/Persian terms created from Sanskrit. They are the common linguistic melting pot with the source of a single shared script in Mesopotamia, centered at Iraq. These are inclusive of Western India and Egypt/Greece range of influence. Early literature from Pali integrates with Sufi literature of 9–16th centuries to form one language, the Hindi. It is only after the period 1800–1900 that it diverges into a Hindi and an Urdu stream.

The similarities in Islam and Hinduism make this bond Urdu/Hindi impeccable as Urdu emerged from Hindi which in turn has its origin in Sanskrit. Languages are an earthly creation free from religion as Hindi created for Hindus is now turning holy for Indian Muslims. Urdu/Hindi may be viewed as neither Aryan nor Hindu nor Muslim, but as a purely Indian, South Asian, a hybrid of five known linguistic groups, Munda, Dravidian, Sanskrit, Persian and Arabic. Urdu/Hindi has the capability to heal religious, racial divisions and focuses on inclusiveness and healing through its scientific history. It helps one to rise above one's personal bias, provide modern outlook with a global and scientific perspective and an aptitude for self-criticism, reorientation.

The similarities in Islam and Hinduism make this bond Urdu/Hindi impeccable as Urdu emerged from Hindi which in turn has its origin in Sanskrit. Languages are an earthly creation free from religion as Hindi created for Hindus is now turning holy for Indian Muslims.

Hindustani is the linguistic super family uniting all in the subcontinent and can even help the famous peace process between India and Pakistan. In fact, Urdu/Hindi and Hindustani are three names for one speech language, the *lingua franca* of the Indian subcontinent or undivided British India (prior to 1947). Urdu and/or Hindustani, as a successor of Persian, was adopted by the British in 1835 as the administrative language and a medium of education because of the national and global status of Persian script. The synthesis of a new Hindi was achieved by purging of Arabic/Persian words and the demand and struggle of Hindu nationalists to remove Urdu. The British, who created Hindi and instigated the development of Hindi nationalism, never removed Urdu and the struggle continued until partition.

The secular leaders like Gandhi, Jinnah, Nehru and others were in favour of continuation of Hindi and Urdu. In fact Mahatma Gandhi, who favoured Urdu's continuation even after partition, was perceived as pro-Muslim. In India Urdu lost its status as the primary language to its twin Hindi in 1949, but it remained important. It is still commonly utilized as the second language in many states. In Pakistan it has retained its prime position.

From a deeper perspective recognizing the global substrates in its genesis and true to its heritage, Urdu/Hindi has grown to be a truly global language including its variants making Urdu/Hindi as world's most widely used language by around 20–30 million people. In fact, 700 million people claim it as their mother language and/or second language. The cultural unity of South Asia is robustly maintained as Pakistani media retaining Hindi and Urdu retaining its hold in Indian streets. Urdu/Hindi has its old quality, neither Hindu nor Muslim, but non-parochial and secular.

To comprehend the history and linguistic base of Urdu/Hindi, one has to look at the Indian subcontinent or South Asia as a geopolitical and linguistic entity, like Europe, with language-based regional sub-nations and a shared vision of history and culture. Linguistically as many as four families are identifiable: the largest Indo-Aryan (IA) branch of the worldwide Indo-European family; Tibeto-Burmese (TBR) of China; Dravidian (DR) and the large Austro-Asiatic (AA) family of Pacific South East Asia. TBR occupies the extreme northeast bordering China-Burma and Indian state of Assam, and Bangladesh. The DR family with its four popular languages, Tamil, Telugu, Kannada and Malayalam, dominates the south. The IA family dominates the rest in about three-fourths of undivided India. The AA family, through its dialects Munda, Santali, Kol etc overlaps all others but is concentrated in the central eastern highlands in the state of Chhattisgarh and Jharkhand and Bihar. Its role is more basic in Urdu and other languages such as Sindhi, Punjabi, Kashmiri, Gujarati, Marathi, Bengali, Assami, Oriya and Nepali which are currently grouped as IA dialects of IE Sanskrit.

Urdu/Hindi, the largest amongst these, is well comprehended in all IA dialectional tract; all share a common genesis, grammar, syntax and about 90% of their vocabulary. These dialects can be appropriately called Para-Hindi or Para-Urdu despite their own regional scripts and political culture. In addition Hindi/Urdu is not infrequently spoken in these areas as a second language, and its films are equally popular. In fact, Urdu and Hindi are one and the same like two sides of a coin. Hindi/Urdu may be the world's most widely used language, if one includes Para-Urdu/Para-Hindi or regional dialects.

In fact, Urdu and Hindi are one and the same like two sides of a coin. Hindi/Urdu may be the world's most widely used language, if one includes Para-Urdu/Para-Hindi or regional dialects.

Poetry has to be one of the more challenging forms of art, not only to create but to interpret and understand. For anyone who loves poetry (whether it be by great poets of bygone eras or their contemporary counterparts) it is forever present to be recited or referenced with much enthusiasm and passion. Sometimes with an element of snobbery, the culturally aware drop poetic references into routine conversations in artsy circles to look down upon their middle class acquaintances and remind us that poetry is inaccessible to those without a certain pedigree or education.

Unfortunately, I am one of those middle class types who cannot recite a poetry or even quote poetic verses amid conversation to support a polemic argument about the state of the world today. I sometimes do feel rather belittled when others who are admittedly more brilliant than I are able to do what I only wish I had the ability to do. To look someone in squarely in the eyes, focus and let loose my verbal assault through Ghalib's or Neeraj's—ah, what a dream I dream!

-Gambhir Watts
President Bharatiya Vidya Bhavan Australia

मेघदूत

पूर्वमेघ

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत:

शापेनास्तग्ङ:मितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तु:।

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।

कोई यक्ष था। वह अपने काम में असावधान हुआ तो यक्षपति ने उसे शाप दिया कि वर्ष-भर पत्नी का भारी विरह सहो। इससे उसकी महिमा ढल गई। उसने रामगिरि के आश्रमों में बस्ती बनाई जहाँ घने छायादार पेड़ थे और जहाँ सीता जी के स्नानों द्वारा पवित्र हुए जल-कुंड भरे थे।

तस्मिन्नद्रो कतिचिदबलाविप्रयुक्त: स कामी

नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठ:

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु

वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।

स्त्री के विछोह में कामी यक्ष ने उस पर्वत पर कई मास बिता दिए। उसकी कलाई सुनहले कंगन के खिसक जाने से सूनी दीखने लगी। आषाढ़ मास के पहले दिन पहाड़ की चोटी पर झुके हुए मेघ को उसने देखा तो ऐसा जान पड़ा जैसे ढूसा मारने में मगन कोई हाथी हो।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुर: कौतुकाधानहेतो-

रन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनो प्यन्यथावृत्ति चेत:

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।

यक्षपति का वह अनुचर कामोत्कंठा जगानेवाले मेघ के सामने किसी तरह ठहरकर, आँसुओं को भीतर ही रोके हुए देर तक सोचता रहा। मेघ को देखकर प्रिय के पास में सुखी जन का चित्त भी और तरह का हो जाता है, कंठालिंगन के लिए भटकते हुए विरही जन का तो कहना ही क्या?

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी

जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।

स प्रत्यग्रै: कुटजकुसुमै: कल्पितार्घाय तस्मै

प्रीत: प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।

जब सावन पास आ गया, तब निज प्रिया के प्राणों को सहारा देने की इच्छा से उसने मेघ द्वारा अपना कुशल-सन्देश भेजना चाहा। फिर, टटके खिले कुटज के फूलों का अर्घ्य देकर उसने गदगद हो प्रीति-भरे वचनों से उसका स्वागत किया।

(जारी ...)

कालिदास संस्कृत भाषा के सबसे महान कवि और नाटककार थे। कालिदास शिव के भक्त थे। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं की। कलिदास अपनी अलंकार युक्त सुंदर सरल और मधुर भाषा के लिये विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके ऋतु वर्णन अद्वितीय हैं और उनकी उपमाएं बेमिसाल। संगीत उनके साहित्य का प्रमुख अंग है और रस का सृजन करने में उनकी कोई उपमा नहीं। उन्होंने अपने शृंगार रस प्रधान साहित्य में भी साहित्यिक सौन्दर्य के साथ-साथ आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। कालिदास की प्रमुख रचनाओं में शामिल हैं -: अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूत, विक्रमोवशीर्यम्, मालविकाग्निमित्रम्, कुमारसंभवम्, ऋतुसंहार। साभार: www.hindisamay.com

एकला चालो रे

चलता गया वह - डगर डगर, नगर नगर।
पगडंडियाँ कभी, कभी कोई राह नहीं।
कभी दिशा ज्ञान नहीं - सूरज नहीं, सितारे नहीं –
घने काले बादलों से आकाश अंधा।
जंगल जंगल, गाँव गाँव, नगर नगर।
चलते चलते चलते सामने आ गयी एक विशाल पाट की बरसाती नदी –
उफान पर आई हुई। पुलिया नहीं, नाव नहीं, मल्लाह नहीं।
हारा नहीं। काट कर पेड़, बनाई एक नैय्या।
जोर लगा के हैय्या! कर ली पार नदिया।
नया नगर, नए लोग ! कुछ दिन सुस्ताया, कुछ मीत बन गए, पर नहीं ठहरा।
डाली नाव नदिया में - घाट घाट रुकता, चलता गया गीत गाता गुनगुनाता।
गहराती गई नदिया, चौड़ा होता गया पाट।
थक गया था नाविक, बूढी हो गई थी नाव।
बड़ा सा आया एक महानगर - छोड़ दी नाव।
चहल पहल, जगमग जगमग लगा हुआ मीना बाज़ार।
मन रम गया कुछ।
थका मुसाफिर रुक गया कुछ दिन।
थक गया भाग दौड़ से, शोर शराबे से - ऊब गया वो।
उठाई गठरी और चल पड़ा फिर।
चलते चलते चलते, ख़त्म हो गयी डगर –
सामने था विशाल सागर - महा सागर ! अब?
रुकना तो है नहीं!
बनाई केले का पेड़ काट एक छोटी सी नैय्या - कोई नहीं खिवैय्या।
बिन डांड - पतवार डाल दी हवाओं के हवाले, खुला आकाश अंतहीन महासागर।
कोई डगर नहीं, कोई दिशा नहीं। मन खुश था, आत्मा उन्मुक्त।
अंतिम यात्रा पर बह चला यात्री।

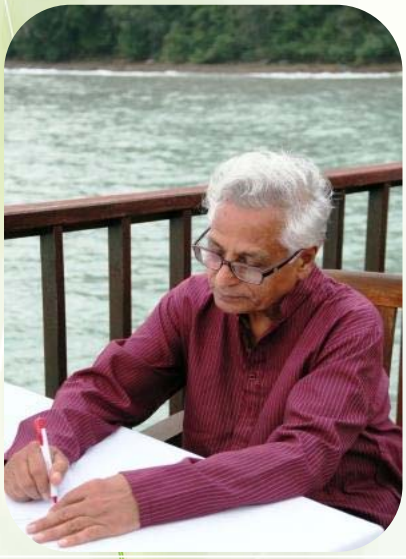

प्रेम माथुर, 73वें साल में 'बूमेरंग' में कवितायेँ प्रकाशित! 75 वर्ष की आयु में पहली कहानी प्रकाशित!! और अंग्रेजी भाषा शिक्षण के विशेषज्ञ रहे 45 साल तक!!!
पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के हिंदी समाज भूतपूर्व अध्यक्ष, अब लेखन के अलावा पर्थ के सीनियर सिटीजंस (वरिष्ठ नागरिकों की) रविवारीय गोष्ठी 'संस्कृति' में गीत-संगीत-साहित्य से मन बहलाते हैं.

नवकली

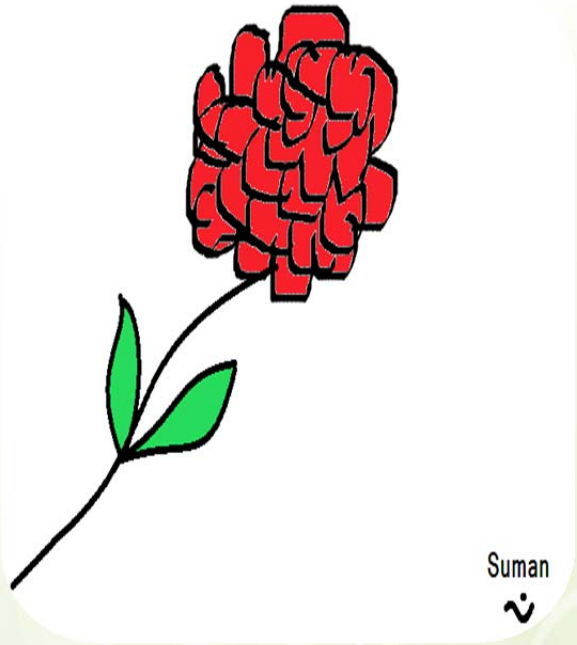

मैं नवकली गुलाब की
अधखिली ही थी अभी
उछलती, फुदकती, लहलहाती
काँटों में झूलती रह गई

सुनहली किरणों से खेलती
इतराती और मुस्कराती
अपनी सुगंध को बिखेरती
मैं चमन में महकती रह गई

रंग-बिरंगी, मस्ती में डूबी
मंडराती तितलियों को
अपनी गोद में बैठा कर
मैं पवन में डोलती रह गई

भौरों के मीठे गीत सुनकर
अपना अनूठा रस पिला कर
नील गगन में लहलहाती
मैं अर्धनिद्रा में डूबी रह गई

लम्बी सी चुटिया की श्रंखला बनकर
इठलाती, झूमती, महकती
सौंदर्य का प्रसाधन बनकर
मैं श्रृंगार में डूबी रह गई

वर,वधू की माला बनकर
विवाह का प्रतीक बनकर
हँसती, उछलती, महकती
मैं नाचती ही रह गई

मैं नवकली गुलाब की
अधखिली ही थी अभी
उछलती, फुदकती,लहलहाती
काँटों में झूलती रह गई ।।

-सुमन

मेलबोर्न से संबंधित सुमन हिंदी और अंग्रेजी में कविताएँ व लघु कथाएँ लिखतीं हैं। सुगंध सुमन, कवितांजली उनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं।

मीरां बाई पदावली

शबरी प्रसंग

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई॥
माता छोडी पिता छोडे छोडे सगा भाई।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
सतं देख दौड आई, जगत देख रोई।
प्रेम आंसु डार डार, अमर बेल बोई॥
मारग में तारग मिले, संत राम दोई।
संत सदा शीश राखूं, राम हृदय होई॥
अंत में से तंत काढयो, पीछे रही सोई।
राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई॥
अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
दास मीरां लाल गिरधर, होनी हो सो होई॥

"नियमितता का अभ्यास एक श्रेष्ठ गुण

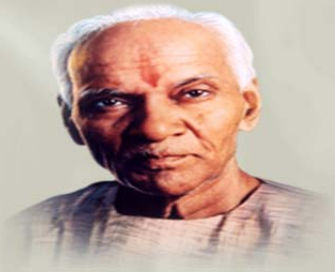

मानवी प्रगति के मार्ग में अत्यंत छोटी किंतु अत्यंत भयानक बाधा है – अनियमितता की आदत। आमतौर से लोग अस्त-व्यस्त पाए जाते हैं। हवा के झोंके के साथ उड़ते रहने वाले पत्तों की तरह कभी इधर-कभी उधर फुदकते-फुदकते रहते हैं। निश्चित दिशा न होने से परिश्रम और समय बेहतर बर्बाद होता रहता है। सामर्थ्य का जितना महत्त्व है उससे अधिक महत्ता इस बात की है कि जो कुछ उपलब्ध है उसी को योजनाबद्ध रूप से, नियत क्रम व्यवस्था अपनाकर, सदुद्देश्य के लिए नियोजित किया जाए। जो ऐसा कर पाते हैं वे ही क्रमिक विकास के राज मार्ग पर चलते हुए उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचते हैं। जो इस ओर ध्यान नहीं देते उन्हें योग्यता एवं सुविधा के रहते हुए भी पिछड़ी परिस्थितियों में पड़े रहना पड़ता है। जबकि सुनियोजित जीवनचर्या बना सकने वाले एक के बाद दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते हुए वहाँ पहुँचते हैं जहाँ साथियों के साथ तुलना करने पर प्रतीत होता है कि कदाचित किसी देव दानव ने ही ऐसा चमत्कार प्रस्तुत किया हो, पर वास्तविकता इतनी ही है कि प्रगतिशील ने नियमितता अपनाई। अपने समय, श्रम और चिंतन को एक दिशा विशेष में संकल्पपूर्वक नियोजित रखा। इसके विपरीत दुर्भाग्य का पश्चाताप उन्हें सहन करना पड़ता है, जो लंबी योजना बनाकर उस पर निश्चयपूर्वक चलते रहना तो दूर अपनी दिनचर्या बनाने तक की आवश्यकता नहीं समझते और बहुमूल्य समय को ऐसे ही आलस्य प्रमाद की अस्त-व्यस्तता में गँवाते रहते हैं।

-पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, बड़े आदमी नहीं महामानव बनें, पृ. २५"

ग़ज़ल

जो लिखा है वह हाशिया[1] आराई[2] नहीं है
फ़न मेरा फ़कत[3] क़ाफ़िया पैमाई[4] नहीं है

कुछ अपनी ही बातें नहीं आती है मेरी समझ में
लगता है मेरी मुझसे शनासाई[5] नहीं है

इस शान से भी जिंदगी काटी है किसी ने
इक भी तो दुआ लब पे मेरे आई नहीं हैं

जो मिलता है हमदर्द समझ लेता हूँ उसको
अपनी यह रविश[6] मुझको पसंद आई नहीं है

हर हाल में यह ज़ीस्त[7] मुझे झेलनी होगी
शर्त ऐसी कोई उसने तो ठहराई नहीं है

क्यूँ ध्यान से सुनता है हर इक शख्श मेरी बात
बातों में मेरी ऐसी गहराई तो नहीं है

इस बात पे नाज़ाँ[8] हूँ खता मुझ से भी यारो
सरज़द तो हुई होगी पे दोहराई नहीं है

कुछ झूठ से भी रँग निखरता है सखुन[9] का
मेरे सभी अशआर में सच्चाई नहीं है

राहत के लिए कहते हैं राहत के सभी यार
सौदाये सखुन है उसे सौदाई नहीं है।

1. लाईन 2. लकीर खींचना 3. केवल 4. माप 5. परिचय 6. आदत 7. ज़िन्दगी 8. गर्व 9. बोल चाल।

सिडनी वासी विख्यात उर्दू कवि ओम कृष्ण राहत ने केवल 13 साल की उम्र में उर्दू कविता का पहला संकलन प्रकाशित किया गया था। वह उर्दू, हिन्दी और पंजाबी में कविता, लघु कहानी और नाटक लिखते हैं। राजेंद्र सिंह बेदी, ख्वाजा अहमद अब्बास पुरस्कार और ऑस्ट्रेलिया की उर्दू सोसायटी निशान-ए-उर्दू के अलावा उन्हें उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब और पश्चिम बंगाल की उर्दू अकादमियों द्वारा भी सम्मानित किया जा चुका है। उपरोक्त कृति, *ताजमहल*, कवि ओम कृष्ण राहत द्वारा सन 2007 में पर्काशित काव्य संग्रह, *दो कदम आगे*, में से संकलित की गयी है।

जाओ कल्पित साथी मन के

जाओ कल्पित साथी मन के!

जब नयनों में सूनापन था,

जर्जर तन था, जर्जर मन था,

तब तुम ही अवलम्ब हुए थे मेरे एकाकी जीवन के!

जाओ कल्पित साथी मन के!

सच, मैंने परमार्थ ना सीखा,

लेकिन मैंने स्वार्थ ना सीखा,

तुम जग के हो, रहो न बनकर बंदी मेरे भुज-बंधन के!

जाओ कल्पित साथी मन के!

जाओ जग में भुज फैलाए,

जिसमें सारा विश्व समाए,

साथी बनो जगत में जाकर मुझ-से अगणित दुखिया जन के!

जाओ कल्पित साथी मन के!

हरिवंश राय बच्चन (27 नवंबर, 1907 - 18 जनवरी, 2003) हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। उनकी कविताओं की लोकप्रियता का प्रधान कारण उसकी सहजता और संवेदनशील सरलता है। 'मधुबाला', 'मधुशाला' और 'मधुकलश' उनके प्रमुख संग्रह हैं। हरिवंश राय बच्चन को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', सरस्वती सम्मान एवं भारत सरकार द्वारा सन् 1976 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। साभार: कविता कोश, http://www.kavitakosh.org, चित्र: http://gadyakosh.org

संत कबीरदास दोहावली

कहना सो कह दिया, अब कुछ कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय॥

वस्तु है ग्राहक नहीं, वस्तु सागर अनमोल।
बिना करम का मानव, फिरैं डांवाडोल॥

कली खोटा जग आंधरा, शब्द न माने कोय।
चाहे कहँ सत आइना, जो जग बैरी होय॥

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोइ सूरमा, जाति वरन कुल खोय॥

जागन में सोवन करे, साधन में लौ लाय।
सूरत डोर लागी रहे, तार टूट नाहिं जाय॥

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथ देइ उड़ाय॥

लागी लगन छूटे नाहिं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावे कोई ले जाय।
कह कबीर कुछ भेद नाहिं, कहां रंक कहां राय॥

घट का परदा खोलकर, सन्मुख दे दीदार।
बाल सनेही सांइयाँ, आवा अन्त का यार॥

कबीर (1398-1518) कबीरदास, कबीर साहब एवं संत कबीर जैसे रूपों में प्रसिद्ध मध्यकालीन भारत के स्वाधीनचेता महापुरुष थे। इनका परिचय, प्राय: इनके जीवनकाल से ही, इन्हें सफल साधक, भक्त कवि, मतप्रवर्तक अथवा समाज सुधारक मानकर दिया जाता रहा है तथा इनके नाम पर कबीरपंथ नामक संप्रदाय भी प्रचलित है। संत कबीर दास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फ़कीरों का सत्संग किया। तीन भागों; रमैनी, सबद और साखी में विस्तृत कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है।

साभार: *www.hindisahityadarpan.in, http://www.kavitakosh.org,* चित्र : *www.hindu-blog.com*

तुलसी दास के दोहे

राम दूरि माया बढ़ती, घटती जानि मन मांह !
भूरी होती रबि दूरि लखि सिर पर पगतर छांह !!

राम राज राजत सकल धरम निरत नर नारि!
राग न रोष न दोष दुःख सुलभ पदारथ चारी!!

चित्रकूट के घाट पर भई संतान की भीर !
तुलसीदास चंदन घिसे तिलक करे रघुबीर!!

तुलसी भरोसे राम के, निर्भय हो के सोए!
अनहोनी होनी नही, होनी हो सो होए!!

नीच निचाई नही तजई, सज्जनहू के संग!
तुलसी चंदन बिटप बसि, बिनु बिष भय न भुजंग !!

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहीं न दूसरी बात!
कौड़ी लागी लोभ बस करहिं बिप्र गुर बात !!

फोरहीं सिल लोढा, सदन लागें अदुक पहार !
कायर, क्रूर , कपूत, कलि घर घर सहस अहार !!

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन!
अब तो दादुर बोलिहं हमें पूछिह कौन!!

मनि मानेक महेंगे किए सहेंगे तृण, जल, नाज!
तुलसी एते जानिए राम गरीब नेवाज!!

होई भले के अनभलो, होई दानी के सूम!
होई कपूत सपूत के ज्यों पावक मैं धूम!!

तुलसी दास (1479–1586) ने हिन्दी भाषी जनता को सर्वाधिक प्रभावित किया। इनका ग्रंथ "रामचरित मानस" धर्मग्रंथ के रूप में मान्य है। तुलसी दास का साहित्य समाज के लिए आलोक स्तंभ का काम करता रहा है। इनकी कविताओं में साहित्य और आदर्श का सुन्दर समन्वय हुआ है। *साभार:* www.anubhuti-hindi.org, चित्र*: www.dlshq.org*

श्री गुरु ग्रंथ साहिब से

नानक नदरी करमी दाति ॥

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ ॥

वडा दाता तिलु न तमाइ ॥

केते मंगहि जोध अपार ॥

केतिआ गणत नही वीचारु ॥

केते खपि तुटहि वेकार ॥

केते लै लै मुकरु पाहि ॥

केते मूरख खाही खाहि ॥

केतिआ दूख भूख सद मार ॥

एहि भि दाति तेरी दातार ॥

बंदि खलासी भाणै होइ ॥

होरु आखि न सकै कोइ ॥

जे को खाइकु आखणि पाइ ॥

ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥

आपे जाणै आपे देइ ॥

आखहि सि भि केई केइ ॥

जिस नो बखसे सिफति सालाह ॥

Copyright 2010 Catnip studio/Katherine Seraphil. All rights reserved

नानक पातिसाही पातिसाहु ॥

अमुल गुण अमुल वापार ॥

अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥

अमुल आवहि अमुल लै जाहि ॥

अमुल भाइ अमुला समाहि ॥

अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु ॥

अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥

अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु ॥

अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥

अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ ॥

आखि आखि रहे लिव लाइ ॥

आखहि वेद पाठ पुराण ॥

आखहि पड़े करहि वखिआण ॥

आखहि बरमे आखहि इंद ॥

आखहि गोपी तै गोविंद ॥

आखहि ईसर आखहि सिध ॥

साभार: http://www.gurbanifiles.org/

Copyright 2010 Catnip studio Katherine Seewald. All rights reserved

नारी

सौंदर्य भरा अनंत अथाह,
इस सागर की कोई न थाह।
कैसे नापूँ इसकी गहनता,
अंतस बहता अनंत प्रवाह।

ज्योति प्रभा से उर आप्लावित,
प्राण सहज करुणा से द्रावित।
अंतर्मन की गहराई में,
प्रेम जड़ें पल्लव विस्तारित।

सरल हृदय संपूर्ण समर्पित,
कण- कण अंतस करती अर्पित।
रोम - रोम में भर चेतनता,
किया समर्पण, होती दर्पित।

प्रणय बोध की मधुरिम गरिमा,
लहराती कोंपल हरीतिमा।
लज्जा की बहती धाराएँ,
रग-रग में भर सृस्टि अरुणिमा।

जीने की वह राह दिखाती,
वेदन को सहना सिखलाती।
अखिल जगत की लेकर पीड़ा,
प्रीत मधुर हर घड़ी लुटाती।

प्रीतम सुख ही तृप्ति आधार,
उसी में ढूँढ़े जग का प्यार।
पुलक-पुलक कर
हंसती मादक,
प्रेम पाये असीम
विस्तार।

आँखों में भर चंचल
बचपन,
सरल सहज देती अपनापन।
राग में होकर भाव विभोर,
सर्वस्व लुटाती तन-मन-धन।

अंतस कितना ही हो भारी,
व्यथा मधुर कर देती नारी।
अपना सारा दर्द भुलाकर
हर लेती वह पीड़ा सारी।

आई. आई. आई. रूडकी (उत्तराँचल) से शिक्षित कवि कुलवंत सिंह काव्य, लेखन व हिंदी सेवाओं के लिए राजभाषा गौरव से सम्मानित किये जा चुके हैं। वे अनेक पत्रिकाएं व रचनाएँ पर्काशित कर चुके हैं। उनमे निम्नलिखित हैं—निकुंज, परमाणु व विकास, शहीद-ए-आजम भगत सिंह, चिरंतन व अन्य रचनाएँ। *कॉपी राईट:* कलवंत सिंह, विज्ञान प्रशन मंच

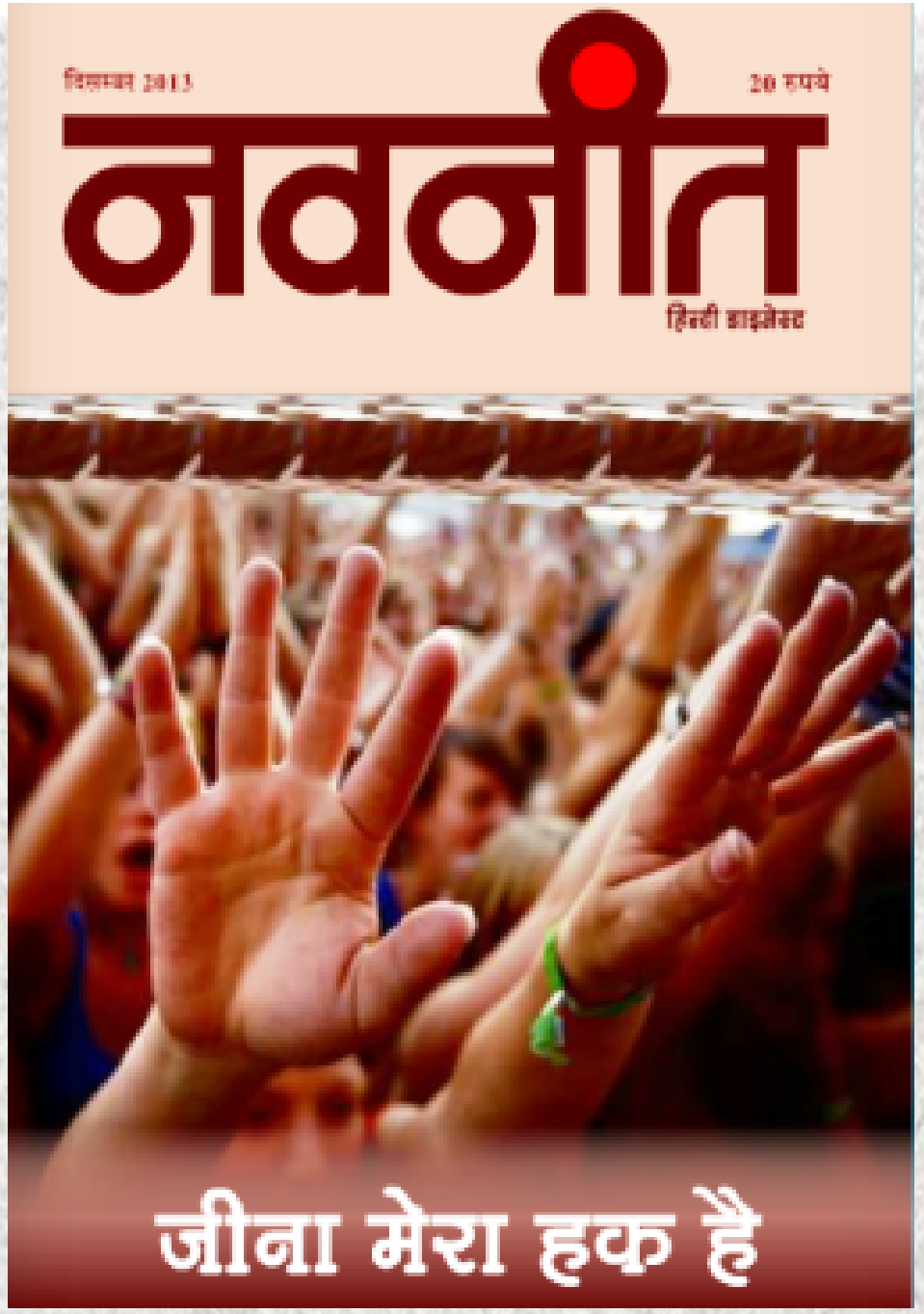

पी. वी. शंकरनकुट्टी द्वारा भारतीय विद्या भवन, के. एम्. मुंशी मार्ग, मुंबई – 400 007 के लिए पर्काशित

तथा सिद्धि प्रिंटर्स, 13/14, भाभा बिल्डिंग, खेतवाडी, 13 लेन, मुंबई – 400 004 में मुद्रित।

ले-आउट एवं डिज़ाइनिंग : समीर पारेख - क्रिएटिव पेज सेटर्स, गोरेगांव, मुंबई – 104, फ़ोन: 98690 08907

संपादक : विश्वनाथ सचदेव

नवनीत अब इन्टरनेट पर भी उपलब्ध है I www.navneet.bhavans.info और साथ ही इन्टरनेट से नवनीत का चंदा भरने के लिए लॉगऑन करें

http://www.bhavans.info/periodical/pay_online.asp

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करे

भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया

कक्ष 100, 515 केंट स्ट्रीट, सिडनी 2000, जीपीओ बॉक्स 4018, सिडनी 2001, फोन: 1300 242 826 (1300 भवन), फैक्स: 61 2 9267 9005,

ईमेल: info@bhavanaustralia.org

नवनीत समर्पण गजराती में भी उपलब्ध

अमृतसर आ गया है

'नीचे उतर, तेरी मैं...हिंदू औरत को लात मारता है! हरामजादे! तेरी उस...।'

'ओ बाबू, बक-बकर नई करो। ओ खजीर के तुख्म, गाली मत बको, अमने बोल दिया। अम तुम्हारा जबान खींच लेगा।'

'गाली देता है मादर...।' बाबू चिल्लाया और उछल कर सीट पर चढ़ गया। वह सिर से पाँव तक काँप रहा था।

'बस-बस।' सरदार जी बोले – 'यह लड़ने की जगह नहीं है। थोड़ी देर का सफर बाकी है, आराम से बैठो।'

'तेरी मैं लात न तोड़ूँ तो कहना, गाड़ी तेरे बाप की है?' बाबू चिल्लाया।

'ओ अमने क्या बोला! सबी लोग उसको निकालता था, अमने बी निकाला। ये इदर अमको गाली देता ए। अम इसका जबान खींच लेगा।'

बुढ़िया बीच में फिर बोले उठी – 'वे जीण जोगयो, अराम नाल बैठो। वे रब्ब दिए बंदयो, कुछ होश करो।'

उसके होंठ किसी प्रेत की तरह फड़फड़ाए जा रहे थे और उनमें से क्षीण-सी फुसफुसाहट सुनाई दे रही थी।

बाबू चिल्लाए जा रहा था – 'अपने घर में शेर बनता था। अब बोल, तेरी मैं उस पठान बनाने वाले की...।'

तभी गाड़ी अमृतसर के प्लेटफार्म पर रुकी। प्लेटफार्म लोगों से खचाखच भरा था। प्लेटफार्म पर खड़े लोग झाँक-झाँक कर डिब्बों के अंदर देखने लगे। बार-बार लोग एक ही सवाल पूछ रहे थे – 'पीछे क्या हुआ है? कहाँ पर दंगा हुआ है?'

खचाखच भरे प्लेटफार्म पर शायद इसी बात की चर्चा चल रही थी कि पीछे क्या हुआ है। प्लेटफार्म पर खड़े दो-तीन खोमचे वालों पर मुसाफिर टूटे पड़ रहे थे। सभी को सहसा भूख और प्यास परेशान करने लगी थी। इसी दौरान तीन-चार पठान हमारे डिब्बे के बाहर प्रकट हो गए और खिड़की में से झाँक-झाँक कर अंदर देखने लगे। अपने पठान साथियों पर नजर पड़ते ही वे उनसे पश्तो में कुछ बोलने लगे। मैंने घूम कर देखा, बाबू डिब्बे में नहीं था। न जाने कब वह डिब्बे में से निकल गया था। मेरा माथा

'गाली देता है मादर...।' बाबू चिल्लाया और उछल कर सीट पर चढ़ गया। वह सिर से पाँव तक काँप रहा था। 'बस-बस।' सरदार जी बोले - 'यह लड़ने की जगह नहीं है। थोड़ी देर का सफर बाकी है, आराम से बैठो।'

ठिनका। गुस्से में वह पागल हुआ जा रहा था। न जाने क्या कर बैठे! पर इस बीच डिब्बे के तीनों पठान, अपनी-अपनी गठरी उठा कर बाहर निकल गए और अपने पठान साथियों के साथ गाड़ी के अगले डिब्बे की ओर बढ़ गए। जो विभाजन पहले प्रत्येक डिब्बे के भीतर होता रहा था,अब सारी गाड़ी के स्तर पर होने लगा था।

खोमचे वालों के इर्द-गिर्द भीड़ छँटने लगी। लोग अपने-अपने डिब्बों में लौटने लगे। तभी सहसा एक ओर से मुझे वह बाबू आता दिखाई दिया। उसका चेहरा अभी भी बहुत पीला था और माथे पर बालों की लट झूल रही थी। नजदीक पहुँचा, तो मैंने देखा, उसने अपने दाएँ हाथ में लोहे की एक छड़ उठा रखी थी। जाने वह उसे कहाँ मिल गई थी! डिब्बे में घुसते समय उसने छड़ को अपनी पीठ के पीछे कर लिया और मेरे साथ वाली सीट पर बैठने से पहले उसने हौले से छड़ को सीट के नीचे सरका दिया। सीट पर बैठते ही उसकी आँखें पठान को देख पाने के लिए ऊपर को उठीं। पर डिब्बे में पठानों को न पा कर वह हड़बड़ा कर चारों ओर देखने लगा।

'निकल गए हरामी, मादर...सब-के-सब निकल गए!' फिर वह सिटपिटा कर उठ खड़ा हुआ चिल्ला कर बोला – 'तुमने उन्हें जाने क्यों दिया? तुम सब नामर्द हो, बुजदिल!'

पर गाड़ी में भीड़ बहुत थी। बहुत-से नए मुसाफिर आ गए थे। किसी ने उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

गाड़ी सरकने लगी तो वह फिर मेरी वाली सीट पर आ बैठा, पर वह बड़ा उत्तेजित था और बराबर बड़बड़ाए जा रहा था।

धीरे-धीरे हिचकोले खाती गाड़ी आगे बढ़ने लगी। डिब्बे में पुराने मुसाफिरों ने भरपेट पूरियाँ खा ली थीं और पानी पी लिया था और गाड़ी उस इलाके में आगे बढ़ने लगी थी, जहाँ उनके जान-माल को खतरा नहीं था।

नए मुसाफिर बतिया रहे थे। धीरे-धीरे गाड़ी फिर समतल गति से चलने लगी थी। कुछ ही देर बाद लोग ऊँघने भी लगे थे। मगर बाबू अभी भी फटी-फटी आँखों से सामने की ओर देखे जा रहा था। बार-बार मुझसे पूछता कि पठान डिब्बे में से निकल कर किस ओर को गए हैं। उसके सिर पर जुनून सवार था।

गाड़ी के हिचकोलों में मैं खुद ऊँघने लगा था। डिब्बे में लेट पाने के लिए जगह नहीं थी। बैठे-बैठे ही नींद में मेरा सिर कभी एक ओर को लुढ़क जाता, कभी दूसरी ओर को। किसी-किसी वक्त झटके से मेरी नींद टूटती, और मुझे सामने की सीट पर अस्त-व्यस्त से पड़े सरदार जी के खर्राटे सुनाई देते। अमृतसर पहुँचने के बाद सरदार जी फिर से सामने वाली सीट पर टाँगे पसार कर लेट गए थे। डिब्बे में तरह-तरह की आड़ी-तिरछी मुद्राओं में मुसाफिर पड़े थे। उनकी बीभत्स मुद्राओं को देख कर लगता, डिब्बा लाशों से भरा है। पास बैठे बाबू पर नजर पड़ती तो कभी तो वह खिड़की के बाहर मुँह किए देख रहा होता, कभी दीवार से पीठ लगाए तन कर बैठा नजर आता।

नींद में मेरा सिर कभी एक ओर को लुढ़क जाता, कभी दूसरी ओर को। किसी-किसी वक्त झटके से मेरी नींद टूटती, और मुझे सामने की सीट पर अस्त-व्यस्त से पड़े सरदार जी के खर्राटे सुनाई देते। अमृतसर पहुँचने के बाद सरदार जी फिर से सामने वाली सीट पर टाँगे पसार कर लेट गए थे। डिब्बे में तरह-तरह की आड़ी-तिरछी मुद्राओं में मुसाफिर पड़े थे।

किसी-किसी वक्त गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकती तो पहियों की गड़गड़ाहट बंद होने पर निस्तब्धता-सी छा जाती। तभी लगता, जैसे प्लेटफार्म पर कुछ गिरा है, या जैसे कोई मुसाफिर गाड़ी में से उतरा है और मैं झटके से उठ कर बैठ जाता।

इसी तरह जब एक बार मेरी नींद टूटी तो गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ गई थी, और डिब्बे में अँधेरा था। मैंने उसी तरह अधलेटे खिड़की में से बाहर देखा। दूर, पीछे की ओर किसी स्टेशन के सिगनल के लाल कुमकुमे चमक रहे थे। स्पष्टत: गाड़ी कोई स्टेशन लाँघ कर आई थी। पर अभी तक उसने रफ्तार नहीं पकड़ी थी।

डिब्बे के बाहर मुझे धीमे-से अस्फुट स्वर सुनाई दिए। दूर ही एक धूमिल-सा काला पुंज नजर आया। नींद की खुमारी में मेरी आँखें कुछ देर तक उस पर लगी रहीं, फिर मैंने उसे समझ पाने का विचार छोड़ दिया। डिब्बे के अंदर अँधेरा

था, बत्तियाँ बुझी हुई थीं,लेकिन बाहर लगता था, पौ फटने वाली है।

मेरी पीठ-पीछे, डिब्बे के बाहर किसी चीज को खरोंचने की-सी आवाज आई। मैंने दरवाजे की ओर घूम कर देखा। डिब्बे का दरवाजा बंद था। मुझे फिर से दरवाजा खरोंचने की आवाज सुनाई दी। फिर, मैंने साफ-साफ सुना, लाठी से कोई डिब्बे का दरवाजा पटपटा रहा था। मैंने झाँक कर खिड़की के बाहर देखा। सचमुच एक आदमी डिब्बे की दो सीढ़ियाँ चढ़ आया था। उसके कंधे पर एक गठरी झूल रही थी, और हाथ में लाठी थी और उसने बदरंग-से कपड़े पहन रखे थे और उसके दाढ़ी भी थी। फिर मेरी नजर बाहर नीचे की ओर आ गई। गाड़ी के साथ-साथ एक औरत भागती चली आ रही थी, नंगे पाँव, और उसने दो गठरियाँ उठा रखी थीं। बोझ के कारण उससे दौड़ा नहीं जा रहा था। डिब्बे के पायदान पर खड़ा आदमी बार-बार उसकी ओर मुड़ कर देख रहा था और हाँफता हुआ कहे जा रहा था – 'आ जा, आ जा, तू भी चढ़ आ, आ जा!'

दरवाजे पर फिर से लाठी पटपटाने की आवाज आई – 'खोलो जी दरवाजा, खुदा के वास्ते दरवाजा खोलो।'

वह आदमी हाँफ रहा था – 'खुदा के लिए दरवाजा खोलो। मेरे साथ में औरतजात है। गाड़ी निकल जाएगी...'

सहसा मैंने देखा, बाबू हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ और दरवाजे के पास जा कर दरवाजे में लगी खिड़की में से मुँह बाहर निकाल कर बोला – 'कौन है? इधर जगह नहीं है।'

बाहर खड़ा आदमी फिर गिड़गिड़ाने लगा – 'खुदा के वास्ते दरवाजा खोलो। गाड़ी निकल जाएगी।...'

और वह आदमी खिड़की में से अपना हाथ अंदर डाल कर दरवाजा खोल पाने के लिए सिटकनी टटोलने लगा।

'नहीं है जगह, बोल दिया, उतर जाओ गाड़ी पर से।' बाबू चिल्लाया और उसी क्षण लपक कर दरवाजा खोल दिया।

'या अल्लाह! उस आदमी के अस्फुट-से शब्द सुनाई दिए। दरवाजा खुलने पर जैसे उसने इत्मीनान की साँस ली हो।'

और उसी वक्त मैंने बाबू के हाथ में छड़ चमकते देखा। एक ही भरपूर वार बाबू ने उस मुसाफिर के सिर पर किया था। मैं देखते ही डर गया और मेरी टाँगें लरज गईं। मुझे लगा, जैसे छड़ के वार का उस आदमी पर कोई असर नहीं हुआ। उसके दोनों हाथ अभी भी जोर से डंडहरे को पकड़े हुए थे। कंधे पर से लटकती गठरी खिसट कर उसकी कोहनी पर आ गई थी।

सिकुड़ती जा रही थीं, मानो उसे पहचानने की कोशिश कर रही हों कि वह कौन है और उससे किस अदावत का बदला ले रहा है। इस बीच अँधेरा कुछ और छन गया था। उसके होंठ फिर से फड़फड़ाए और उनमें सफेद दाँत फिर से झलक उठे। मुझे लगा, जैसे वह मुस्कराया है, पर वास्तव में केवल क्षय के ही कारण होंठों में बल पड़ने लगे थे।

तभी सहसा उसके चेहरे पर लहू की दो-तीन धारें एक साथ फूट पड़ीं। मुझे उसके खुले होंठ और चमकते दाँत नजर आए। वह दो-एक बार 'या अल्लाह!' बुदबुदाया, फिर उसके पैर लड़खड़ा गए। उसकी आँखों ने बाबू की ओर देखा, अधमुँदी-सी आँखें, जो धीर-धीरे सिकुड़ती जा रही थीं, मानो उसे पहचानने की कोशिश कर रही हों कि वह कौन है और उससे किस अदावत का बदला ले रहा है। इस बीच अँधेरा कुछ और छन गया था। उसके होंठ फिर से फड़फड़ाए और उनमें सफेद दाँत फिर से झलक उठे। मुझे लगा, जैसे वह मुस्कराया है, पर वास्तव में केवल क्षय के ही कारण होंठों में बल पड़ने लगे थे।

नीचे पटरी के साथ-साथ भागती औरत बड़बड़ाए और कोसे जा रही थी। उसे अभी भी मालूम नहीं हो पाया था कि क्या हुआ है। वह अभी भी शायद यह समझ रही थी कि गठरी के कारण उसका पति गाड़ी पर ठीक तरह से चढ़ नहीं पा रहा है, कि उसका पैर जम नहीं पा रहा है। वह गाड़ी के साथ-साथ भागती हुई, अपनी दो गठरियों के बावजूद अपने पति के पैर पकड़-पकड़ कर सीढ़ी पर टिकाने की कोशिश कर रही

थी।

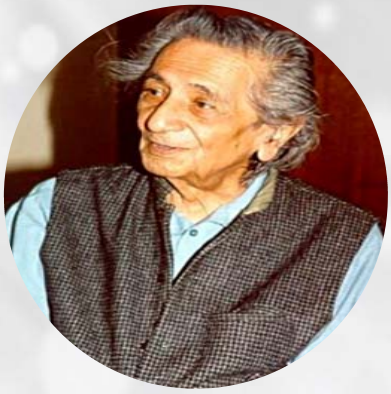

तभी सहसा डंडहरे से उस आदमी के दोनों हाथ छूट गए और वह कटे पेड़ की भाँति नीचे जा गिरा। और उसके गिरते ही औरत ने भागना बंद कर दिया, मानो दोनों का सफर एक साथ ही खत्म हो गया हो।

बाबू अभी भी मेरे निकट, डिब्बे के खुले दरवाजे में बुत-का-बुत बना खड़ा था, लोहे की छड़ अभी भी उसके हाथ में थी। मुझे लगा,जैसे वह छड़ को फेंक देना चाहता है लेकिन उसे फेंक नहीं पा रहा, उसका हाथ जैसे उठ नहीं रहा था। मेरी साँस अभी भी फूली हुई थी और डिब्बे के अँधियारे कोने में मैं खिड़की के साथ सट कर बैठा उसकी ओर देखे जा रहा था। फिर वह आदमी खड़े-खड़े हिला। किसी अज्ञात प्रेरणावश वह एक कदम आगे बढ़ आया और दरवाजे में से बाहर पीछे की ओर देखने लगा। गाड़ी आगे निकलती जा रही थी।

दूर, पटरी के किनारे अँधियारा पुंज-सा नजर आ रहा था।

बाबू का शरीर हरकत में आया। एक झटके में उसने छड़ को डिब्बे के बाहर फेंक दिया। फिर घूम कर डिब्बे के अंदर दाएँ-बाएँ देखने लगा। सभी मुसाफिर सोए पड़े थे। मेरी ओर उसकी नजर नहीं उठी।

थोड़ी देर तक वह खड़ा डोलता रहा, फिर उसने घूम कर दरवाजा बंद कर दिया। उसने ध्यान से अपने कपड़ों की ओर देखा, अपने दोनों हाथों की ओर देखा, फिर एक-एक करके अपने दोनों हाथों को नाक के पास ले जा कर उन्हें सूँघा, मानो जानना चाहता हो कि उसके हाथों से खून की बू तो नहीं आ रही है। फिर वह दबे पाँव चलता हुआ आया और मेरी बगलवाली सीट पर बैठ गया।

धीरे-धीरे झुटपुटा छँटने लगा, दिन खुलने लगा। साफ-सुथरी-सी रोशनी चारों ओर फैलने लगी। किसी ने जंजीर खींच कर गाड़ी को खड़ा नहीं किया था, छड़ खा कर गिरी उसकी देह मीलों पीछे छूट चुकी थी। सामने गेहूँ के खेतों में फिर से हल्की-हल्की लहरियाँ उठने लगी थीं।

सरदार जी बदन खुजलाते उठ बैठे। मेरी बगल में बैठा बाबू दोनों हाथ सिर के पीछे रखे सामने की ओर देखे जा रहा था। रात-भर में उसके चेहरे पर दाढ़ी के छोटे-छोटे बाल उग आए थे। अपने सामने बैठा देख कर सरदार उसके साथ बतियाने लगा – 'बड़े जीवट वाले हो बाबू, दुबले-पतले हो, पर बड़े गुर्दे वाले हो। बड़ी हिम्मत दिखाई है। तुमसे डर कर ही वे पठान डिब्बे में से निकल गए। यहाँ बने रहते तो एक-न-एक की खोपड़ी तुम जरूर दुरुस्त कर देते...' और सरदार जी हँसने लगे।

बाबू जवाब में मुसकराया - एक वीभत्स-सी मुस्कान, और देर तक सरदार जी के चेहरे की ओर देखता रहा।

रावलपिंडी पाकिस्तान में जन्मे भीष्म साहनी (8 अगस्त 1915 - 11 जुलाई 2003) आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख स्तंभों में से थे। 1937 में लाहौर गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम ए करने के बाद साहनी ने 1958 में पंजाब विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि हासिल की। इसके पश्चात अंबाला और अमृतसर में भी अध्यापक रहने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर ने। इन्होंने करीब दो दर्जन रूसी किताबें जैसे टालस्टॉय आस्ट्रोवस्की इत्यादि लेखकों की किताबों का हिंदी में रूपांतर किया।

भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा का अग्रणी लेखक माना जाता है। उन्हें 1975 में तमस के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिरोमणि लेखक अवार्ड (पंजाब सरकार), 1980 में एफ्रो एशियन राइटर्स असोसिएशन का लोटस अवार्ड, 1983 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा 1998 में भारत सरकार के पद्मभूषण अलंकरण से विभूषित किया गया। उनके उपन्यास तमस पर 1986 में एक फिल्म का निर्माण भी किया गया था।

प्रमुख रचनाएँ: उपन्यास: झरोखे, तमस, बसन्ती, मायादास की माडी, कुन्तो, नीलू निलिमा निलोफर, कहानी संग्रह: मेरी प्रिय कहानियां, भाग्यरेखा, वांगचू, निशाचर, नाटक: हनूश, माधवी, कबीरा खड़ा बजार में, मुआवज़े, आत्मकथा: बलराज माय ब्रदर, बालकथा: गुलेल का *खेल। साभार:* www.hindisamay.com

काबुलीवाला

मेरी पाँच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से पल भर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। दुनिया में आने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही वर्ष लगाया होगा। उसके बाद से जितनी देर तक सो नहीं पाती है, उस समय का एक पल भी वह चुप्पी में नहीं खोती। उसकी माता बहुधा डाँट-फटकारकर उसकी चलती हुई जबान बन्द कर देती है; किन्तु मुझसे ऐसा नहीं होता। मिनी का मौन मुझे ऐसा अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, कि मुझसे वह अधिक देर तक सहा नहीं जाता और यही कारण है कि मेरे साथ उसके भावों का आदान-प्रदान कुछ अधिक उत्साह के साथ होता रहता है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्तरहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था कि इतने में मिनी ने आकर कहना आरम्भ कर दिया, "बाबूजी! रामदयाल दरबान कल 'काक' को कौआ कहता था। वह कुछ जानता ही नहीं, न बाबूजी?"

जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचनमाला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में बन्दीगृह के ऊंचे झरोखे से नीचे कलकल करती हुई सरिता में कूद रहे थे। रा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर से चिल्लाने लगी, "काबुलवाला, ओ काबुलवाला।"

विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ बताने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, "बाबूजी! भोला कहता था आकाश मुँह से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ-मूठ कहता है न? खाली बक-बक किया करता है, दिन-रात बकता रहता है।"

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी राह न देख कर, चट से धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, "बाबूजी, माँ तुम्हारी कौन लगती है?"

मन ही मन में मैंने कहा - साली और फिर बोला, "मिनी, तू जा, भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है, अच्छा।"

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटने और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन दही चटाके' कहना आरम्भ कर दिया। जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचनमाला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में बन्दीगृह के ऊंचे झरोखे से नीचे कलकल करती हुई सरिता में कूद रहे थे।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर से चिल्लाने लगी, "काबुलवाला, ओ काबुलवाला।"

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर कुल्ला रखे, उस पर साफा बाँधे कन्धे पर सूखे फलों की मैली झोली लटकाए, हाथ में चमन के अंगूरों की कुछ पिटारियाँ लिए, एक लम्बा-तगड़ा-सा काबुली मन्द चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी छोटी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदय हुए यह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया। मैंने सोचा, अभी झोली कन्धे पर डाले, सर पर एक मुसीबत आ खड़ी होगी और मेरा सत्तरहवाँ अध्याय आज अधूरा रह जाएगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली ने हँसते हुए उसकी ओर मुँह फेरा और घर की ओर बढ़ने लगा; त्यों ही मिनी भय खाकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहाँ छिप गई। उसके छोटे-से मन में वह अन्धविश्वास बैठ गया था कि उस मैली-कुचैली झोली के अन्दर ढूँढने पर उस जैसी और भी जीती-जागती बच्चियाँ निकल सकती हैं।

इधर काबुली ने आकर मुस्कराते हुए मुझे हाथ उठाकर अभिवादन किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, वास्तव में

देखूँ तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बेंच पर बैठी हुई काबुली से हँस-हँसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली-जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है।

प्रतापसिंह और कंचनमाला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। खुद रहमत, रूस, अंग्रेज, सीमान्त रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में उठकर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा, "बाबूजी, आपकी बच्ची कहाँ गई?"

मैंने मिनी के मन से व्यर्थ का भय दूर करने के अभिप्राय से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिल्कुल लगकर काबुली के मुख और झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और खुबानी निकालकर देना चाहा, पर उसने नहीं लिया और दुगुने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से लिपट गई। उसका पहला परिचय इस प्रकार हुआ।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे मैं किसी आवश्यक कार्यवश बाहर जा रहा था। देखूँ तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बेंच पर बैठी हुई काबुली से हँस-हँसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली-जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पाँच वर्ष के जीवन में, बाबूजी के सिवा, ऐसा धैर्यवाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका फिराक का अग्रभाग बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा, "इसे यह सब क्यों दे दिया? अब कभी मत देना।" कहकर कुर्ते की जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दी। उसने बिना किसी हिचक के अठन्नी लेकर अपनी झोली में रख ली।

कुछ देर बाद, घर लौटकर देखता हूं तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की माँ एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथ में लिए डाँट-डपटकर मिनी से पूछ रही थी, "तूने यह अठन्नी पाई कहाँ से, बता?"

मिनी ने कहा, "काबुल वाले ने दी है।"

"काबुल वाले से तूने अठन्नी ली कैसे, बता?"

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा, "मैंने माँगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।"

मैंने जाकर मिनी की उस अकस्मात मुसीबत से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी ही भेंट थी, सो बात नहीं। इस दौरान में वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनी के छोटे से हृदय पर बहुत अधिकार कर लिया है।

देखा कि इस नई मित्रता में बँधी हुई बातें और हँसी ही प्रचलित है। जैसे मेरी बिटिया, रहमत को देखते ही, हँसती हुई पूछती, "काबुल वाला, ओ काबुल वाला, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है? काबुली, जिसका नाम रहमत था, एक अनावश्यक चन्द्र-बिन्दु जोड़कर मुस्कराता हुआ उत्तर देता, "हाँ बिटिया उसके परिहास का रहस्य क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी इन नए मित्रों को इससे तनिक विशेष खेल-सा प्रतीत होता है और जाड़े के प्रभात में एक सयाने और एक बच्ची की सरल हँसी सुनकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता, "तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा?"

हमारे देश की लड़कियाँ जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण तनिक-सी बच्ची को ससुराल के विषय में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, अत: रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी; इस पर भी किसी बात का उत्तर दिए बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल ही विरुद्ध था। उलटे, वह रहमत से ही पूछती, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक श्वसुर के लिए अपना जबर्दस्त घूँसा तानकर कहता, "हम ससुर को मारेगा।"

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अनजाने जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

देखते-देखते जाड़े की सुहावनी ऋतु आ गई। पूर्व युग में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिए कूच करते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कहीं नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन ब्रह्माण्ड में घूमा करता है। यानी, मैं अपने घर में ही चिर प्रवासी हूँ, बाहरी ब्रह्माण्ड के लिए मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का नाम आगे आते ही मेरा मन वहीं की उड़ान लगाने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतंत्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

इधर देखा तो मैं ऐसी प्रकृति का प्राणी हूँ, जिसका अपना घर

अत: रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी; इस पर भी किसी बात का उत्तर दिए बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल ही विरुद्ध था। उलटे, वह रहमत से ही पूछती, "तुम ससुराल जाओगे?"

छोड़कर बाहर निकलने में सिर कटता है। यही कारण है कि सवेरे के समय अपने छोटे- से कमरे में मेज के सामने बैठकर उस काबुली से गप-शप लड़ाकर बहुत कुछ भ्रमण का काम निकाल लिया करता हूँ। मेरे सामने काबुल का पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों ओर ऊबड़खाबड़, लाल-लाल ऊँचे दुर्गम पर्वत हैं और रेगिस्तानी मार्ग, उन पर लदे हुए ऊँटों की कतार जा रही है। ऊँचे-ऊँचे साफे बाँधे हुए सौदागर और यात्री कुछ ऊँट की सवारी पर हैं तो कुछ पैदल ही जा रहे हैं। किन्हीं के हाथों में बरछा है, तो कोई बाबा आदम के जमाने की पुरानी बन्दूक थामे हुए है। बादलों की भयानक गर्जन के

स्वर में काबुली लोग अपने मिली-जुली भाषा में अपने देश की बातें कर रहे हैं।

मिनी की माँ बड़ी वहमी तबीयत की है। राह में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि संसार भर के सारे मस्त शराबी हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं। उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोर-डकैत, मस्त, शराबी, साँप, बाघ, रोगों, मलेरिया,तिलचट्टे और अंग्रेजों से भरी पड़ी है। इतने दिन हुए इस दुनिया में रहते हुए भी उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चिंत नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ बैठती, "क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते? क्या एक लम्बे-तगड़े काबुली के लिए एक छोटे बच्चे का उठा ले जाना असम्भव है?" इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बात नितान्त असम्भव हो सो बात नहीं पर भरोसे के काबिल नहीं। भरोसा करने की शक्ति सबमें समान नहीं होती, अत: मिनी की माँ के मन में भय ही रह गया लेकिन केवल इसीलिए बिना किसी दोष के रहमत को अपने घर में आने से मना न कर सका।

हर वर्ष रहमत माघ मास में लगभग अपने देश लौट जाता है। इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में तल्लीन रहता है। उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है, फिर भी मिनी से उसकी भेंट एक बार अवश्य हो जाती है। देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य किसी षड्यंत्र का श्रीगणेश हो रहा है। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखूँ तो वह संध्या को हाजिर है। अँधेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच ही मन में अचानक भय-सा पैदा हो जाता है।

लेकिन, जब देखता हूं कि मिनी 'ओ काबुल वाला' पुकारती हुई हँसती-हँसती दौड़ी आती है और दो भिन्न-भिन्न आयु के असम मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा हृदय खुशी से नाच उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई पुस्तक के प्रूफ देख रहा था। जाड़ा, विदा होने से पूर्व, आज दो-तीन दिन खूब जोरों से अपना प्रकोप दिखा रहा है। जिधर देखो, उधर उस जाड़े की ही चर्चा है। ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्मी मुझे अच्छी प्रतीत होने लगी। लगभग आठ बजे का समय होगा। सिर से मफलर लपेटे ऊषाचरण सवेरे की सैर करके घर की ओर लौट रहे थे। ठीक इस समय राह में एक बड़े जोर का शोर सुनाई दिया।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चिंत नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ बैठती, "क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया?

देखूँ तो अपने उस रहमत को दो सिपाही बाँधे लिए जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशाई बच्चों का झुंड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुर्ते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से लथपथ छुरा। मैंने द्वार से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा, "क्या बात है?"

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत से सुना कि हमारे एक पड़ोसी ने रहमत से रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ रुपए उसकी ओर बाकी थे, जिन्हें देने से उसने साफ इन्कार कर दिया। बस इसी पर दोनों में बात बढ़ गई और रहमत ने छुरा निकालकर घोंप दिया।

रहमत उस झूठे बेईमान आदमी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अपशब्द सुना रहा था। इतने में "काबुल वाला! ओ काबुल वाला!" पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक हास्य से चमक उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी। अत: झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आते के साथ ही उसने पूछा, "तुम ससुराल जाओगे।"

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा, "हां, वहीं तो जा रहा हूं।"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह जवाब मिनी के चेहरे पर हँसी न ला सकेगा और तब उसने हाथ दिखाकर कहा, "ससुर को मारता, पर क्या करूँ, हाथ बँधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला।

रहमत का ध्यान धीरे-धीरे मन से बिल्कुल उतर गया। हम लोग अब अपने घर में बैठकर सदा के अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम-धंधों में उलझे हुए दिन बिता रहे थे। तभी एक स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला इन्सान कारागार की प्राचीरों के अन्दर कैसे वर्ष पर वर्ष काट रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उठी ही नहीं।

और चंचल मिनी का आचरण तो और भी लज्जाप्रद था। यह बात उसके पिता को भी माननी पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नबी सईस के साथ मित्रता जोड़ी, फिर क्रमश: जैसे-जैसे उसकी वयोवृध्दि होने लगी वैसे-वैसे सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियाँ जुटने लगीं और तो क्या, अब वह अपने बाबूजी के लिखने के कमरे में भी दिखाई नहीं देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया है।

कितने ही वर्ष बीत गये। वर्षों बाद आज फिर शरद ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जाएगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी माँ-बाप के घर में अँधेरा करके ससुराल चली जाएगी।

सवेरे दिवाकर बड़ी सज-धज के साथ निकले। वर्षों के बाद शरद ऋतु की यह नई धवल धूप सोने में सुहागे का काम दे रही है। कलकत्ता की सँकरी गलियों से परस्पर सटे हुए पुराने ईंटझर गन्दे घरों के ऊपर भी इस धूप की आभा ने एक प्रकार का अनोखा सौन्दर्य बिखेर दिया है।

कितने ही वर्ष बीत गये। वर्षों बाद आज फिर शरद ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जाएगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी माँ-बाप के घर में अँधेरा करके ससुराल चली जाएगी।

हमारे घर पर दिवाकर के आगमन से पूर्व ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी विच्छेद पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे ब्रह्माण्ड में फैला रही है। मेरी मिनी का आज विवाह है।

सवेरे से घर बवंडर बना हुआ है। हर समय आने-जाने वालों का ताँता बँधा हुआ है। आँगन में बाँसों का मंडप बनाया जा रहा है। हरेक कमरे और बरामदे में झाड़फानूस लटकाए जा रहे हैं, और उनकी टक-टक की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चलो रे', 'जल्दी करो', 'इधर आओ' की तो कोई गिनती ही नहीं है।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न तो झोली थी और न पहले जैसे लम्बे-लम्बे बाल और न चेहरे पर पहले जैसी दिव्य ज्योति ही थी। अन्त में उसकी मुस्कान देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा, "क्यों रहमत, कब आए?"

उसने कहा, "कल शाम को जेल से छूटा हूँ।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आँखों से नहीं देखा था, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़-सा गया। मेरी यही इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिन में वह इंसान यहाँ से टल जाए तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर में कुछ आवश्यक काम है, सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूं। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुनकर वह उसी क्षण जाने को तैयार हो गया। पर द्वार के पास आकर कुछ इधर-उधर देखकर बोला, "क्या, बच्ची को तनिक नहीं देख सकता?"

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा हो कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुल वाला, ओ काबुल वाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आएगी। उन दोनों के पहले हास-परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी? यहाँ तक कि पहले की मित्रता की याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज के दोने में थोड़ी-सी किसमिस और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से माँग-ताँगकर लेता आया था। उसकी पहले की मैली-कुचैली झोली आज उसके पास न थी।

मैंने कहा, "आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी।"

मेरा उत्तर सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। उसी मुद्रा में उसने एक बार मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर अभिवादन करके दरवाजे के बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊँ, इतने में देखा तो वह स्वयं ही आ रहा है।

वह पास आकर बोला, "ये अंगूर और कुछ किसमिस, बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसको दे दीजिएगा।"

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उसने मेरे हाथ को थामते हुए कहा, "आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, हमेशा याद रहेगी, पिसा रहने दीजिए।" तनिक रुककर फिर बोला- "बाबू साहब! आपकी जैसी मेरी भी देश में एक बच्ची है। मैं उसकी याद कर-कर आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता हूँ। मैं यह सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उसने ढीले-ढाले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला, और बड़े जतन से उसकी चारों तहें खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया।

देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे-से हाथ के छोटे-से पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तेलचित्र नहीं, हाथ में-थोड़ी-सी कालिख लगाकर कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी बेटी के इस स्मृति-पत्र को छाती से लगाकर, रहमत हर वर्ष कलकत्ता के गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है और तब वह कालिख चित्र मानो उसकी बच्ची के हाथ का कोमल-स्पर्श, उसके बिछड़े हुए विशाल वक्ष:स्थल में अमृत उड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आँखें भर आईं और फिर मैं इस बात को बिल्कुल ही भूल गया कि वह एक मामूली काबुली मेवा वाला है, मैं एक उच्च वंश का रईस हूँ। तब मुझे ऐसा लगने लगा कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी एक बाप है और मैं भी। उसकी पर्वतवासिनी छोटी बच्ची की निशानी मेरी ही मिनी की याद दिलाती है। मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया; हालाँकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और अलंकारों में लिपटी हुई बेचारी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उस अवस्था में देखकर रहमत काबुल पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में हँसते हुए बोला, "लल्ली! सास के घर जा रही है क्या?"

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अत: अब उससे पहले की तरह उत्तर देते न बना। रहमत की बात सुनकर मारे लज्जा के उसके कपोल लाल हो उठे। उसने मुँह को फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आई, जब रहमत के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद, एक गहरी साँस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक साफ हो गई कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी, और उसके साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी। सम्भवत: वह उसे पहले जैसी नहीं पाएगा। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने? सवेरे के समय शरद की स्निग्ध सूर्य किरणों में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के मेरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसके हाथ में दिया और कहा, "रहमत, तुम देश चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पाएगी।"

रहमत को रुपए देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छाँटकर काट देने पड़े। जैसी मन में थी, वैसी रोशनी नहीं करा सका, अंग्रेजी बाजा भी नहीं आया, घर में औरतें बड़ी बिगड़ने लगीं, सब कुछ हुआ, फिर भी मेरा विचार है कि आज एक अपूर्व ज्योत्स्ना से हमारा शुभ समारोह उज्ज्वल हो उठा।

साभार: www.hindisamay.com

- रवींद्रनाथ टैगोर

शेर और किशमिश

एक खूबसूरत गांव था। चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ। पहाड़ी के पीछे एक शेर रहता था। जब भी वह ऊंचाई पर चढ़कर गरजता था तो गांव वाले डर के मारे कांपने लगते थे। कड़ाके की ठंड का समय था। सारी दुनिया बर्फ से ढंकी हुई थी। शेर बहुत भूखा था। उसने कई दिनों से कुछ नहीं खाया था। शिकार के लिए वह नीचे उतरा और गांव में घुस गया।

वह शिकार की ताक में घूम रहा था। दूर से उसे एक झोपड़ी दिखाई दी। खिड़की में से टिमटिमाते दिए की रोशनी बाहर आ रही थी। शेर ने सोचा यहां कुछ न कुछ खाने को जरूर मिल जाएगा। वह खिड़की के नीचे बैठ गया। झोपड़ी के अंदर से बच्चे के रोने की आवाज आई। ऊं...आं... ऊं...आं..। वह लगातार रोता जा रहा था। शेर इधर-उधर देखकर मकान में घुसने ही वाला था कि उसे औरत की आवाज आई- 'चुप रहे बेटा। देखो लोमड़ी आ रही है। बाप रे, कितनी बड़ी लोमड़ी है? कितना बड़ा मुंह है इसका। कितना डर लगता है उसको देखकर।' लेकिन बच्चे ने रोना बंद नहीं किया।

मां ने फिर कहा- 'वह देखो, भालू आ गया... भालू खिड़की के बाहर बैठा है। बंद करो रोना नहीं तो भालू अंदर आ जाएगा', लेकिन बच्चे का रोना जारी रहा। उसे डराने का कोई असर नहीं पड़ा। खिड़की के नीचे बैठा शेर सोच रहा था- 'अजीब बच्चा है यह! काश मैं उसे देख सकता। यह न तो लोमड़ी से डरता है, न भालू से।' उसे फिर जोर की भूख सताने लगी। शेर खड़ा हो गया। बच्चा अभी भी रोए जा रहा था।

'देखो... देखो...' मां की आवाज आई, 'देखो शेर आ गया शेर। वह रहा खिड़की के नीचे।' लेकिन बच्चे का रोना, फिर भी बंद नहीं हुआ। यह सुनकर शेर को बहुत ताज्जुब हुआ और बच्चे की बहादुरी से उसको डर लगने लगा। उसे चक्कर आने लगे और बेहोश-सा हो गया। 'वह कैसे जान गई कि मैं खिड़की के पास हूं।' शेर ने सोचा।थोड़ी देर बाद उसकी जान में जान आई और उसने खिड़की के अंदर झांका। बच्चा अभी भी रो रहा था। उसे शेर का नाम सुनकर भी डर नहीं लगा। शेर ने आज तक ऐसा कोई जीव नहीं देखा जो उससे न डरता हो। वह तो यही समझता था कि उसका नाम सुनकर दुनिया के सारे जीव डर के मारे कांपने लगते हैं, लेकिन इस विचित्र बच्चे ने मेरी भी कोई परवाह नहीं की। उसे किसी भी चीज का डर नहीं है। शेर का भी नहीं।

अब शेर को चिंता होने लगी। तभी मां की फिर आवाज सुनाई दी। 'लो अब चुप रहो। यह देखो किशमिश...।' बच्चे ने फौरन रोना बंद कर दिया। बिलकुल सन्नाटा छा गया। शेर ने सोचा- 'यह किशमिश कौन है? बहुत खूंखार होगा।' अब तो शेर भी किशमिश के बारे में सोचकर डरने लगा। उसी समय कोई भारी चीज धम्म से उसकी पीठ पर गिरी। शेर अपनी जान बचाकर वहां से भागा। उसने सोचा कि उसकी पीठ पर किशमिश ही कूदा होगा।

असल में उसकी पीठ पर एक चोर कूदा था, जो उस घर में गाय-भैंस चुराने आया था। अंधेरे में शेर को गाय समझकर वह छत पर से उसकी पीठ पर कूद गया। डरा तो चोर भी। उसकी तो जान ही निकल गई जब उसे पता चला कि वह शेर की पीठ पर सवार है, गाय की पीठ पर नहीं। शेर बहुत तेजी से पहाड़ी की ओर दौड़ा, ताकि किशमिश नीचे गिर पड़े, लेकिन चोर ने भी कसकर शेर को पकड़ रखा था। वह जानता था कि यदि वह नीचे गिरा तो शेर उसे जिंदा नहीं छोड़ेगा। शेर को अपनी जान का डर था और चोर को अपनी जान का। थोड़ी देर में सुबह का उजाला होने लगा। चोर को एक पेड़ की डाली दिखाई दी। उसने जोर से डाली पकड़ी और तेजी से पेड़ के ऊपर चढ़कर छिप गया। शेर की पीठ से छुटकारा पाकर उसने चैन की सांस ली। शेर ने भी चैन की सांस ली- 'भगवान को धन्यवाद मेरी जान बचाने के लिए। किशमिश तो सचमुच बहुत भयानक जीव है' और वह भूखा-प्यासा वापस पहाड़ी पर अपनी गुफा में चला गया।

साभार: www.hindisamay.com

एक छोटा-सा मजाक

सरदियों की ख़ूबसूरत दोपहर... सरदी बहुत तेज़ है। नाद्या ने मेरी बाँह पकड़ रखी है। उसके घुंघराले बालों में बर्फ़ इस तरह जम गई है कि वे चांदनी की तरह झलकने लगे हैं। होंठों के ऊपर भी बर्फ़ की एक लकीर-सी दिखाई देने लगी है। हम एक पहाड़ी पर खड़े हुए हैं। हमारे पैरों के नीचे मैदान पर एक ढलान पसरी हुई है जिसमें सूरज की रोशनी ऐसे चमक रही है जैसे उसकी परछाई शीशे में पड़ रही हो। हमारे पैरों के पास ही एक स्लेज पड़ी हुई है जिसकी गद्दी पर लाल कपड़ा लगा हुआ है।

--चलो नाद्या, एक बार फिसलें! --मैंने नाद्या से कहा-- सिर्फ़ एक बार! घबराओ नहीं, हमें कुछ नहीं होगा, हम ठीक-ठाक नीचे पहुँच जाएंगे।

लेकिन नाद्या डर रही है। यहाँ से, पहाड़ी के कगार से, नीचे मैदान तक का रास्ता उसे बेहद लम्बा लग रहा है। वह भय से पीली पड़ गई है। जब वह ऊपर से नीचे की ओर झाँकती है और जब मैं उससे स्लेज पर बैठने को कहता हूँ तो जैसे उसका दम निकल जाता है। मैं सोचता हूँ-- लेकिन तब क्या होगा, जब वह नीचे फिसलने क ख़तरा उठा लेगी! वह तो भय से मर ही जाएगी या पागल ही हो जाएगी।

जब वह ऊपर से नीचे की ओर झाँकती है और जब मैं उससे स्लेज पर बैठने को कहता हूँ तो जैसे उसका दम निकल जाता है। मैं सोचता हूँ-- लेकिन तब क्या होगा, जब वह नीचे फिसलने क ख़तरा उठा लेगी! वह तो भय से मर ही जाएगी या पागल ही हो जाएगी।

--मेरी बात मान लो! --मैंने उससे कहा-- नहीं-नहीं, डरो नहीं, तुममें हिम्मत की कमी है क्या?

आख़िरकार वह मान जाती है। और मैं उसके चेहरे के भावों को पढ़ता हूँ। ऐसा लगता है जैसे मौत का ख़तरा मोल लेकर ही उसने मेरी यह बात मानी है। वह भय से सफ़ेद पड़ चुकी है और काँप रही है। मैं उसे स्लेज पर बैठाकर, उसके कंधों पर अपना हाथ रखकर उसके पीछे बैठ जाता हूँ। हम उस अथाह गहराई की ओर फिसलने लगते हैं। स्लेज गोली की तरह बड़ी तेज़ी से नीचे जा रही है। बेहद ठंडी हवा हमारे चेहरों पर चोट कर रही है। हवा ऐसे चिंघाड़ रही है कि लगता है, मानों कोई तेज़ सीटी बजा रहा हो। हवा जैसे गुस्से से हमारे बदनों को चीर रही है, वह हमारे सिर उतार लेना चाहती है। हवा इतनी तेज़ है कि साँस लेना भी मुश्किल है। लगता है, मानों शैतान हमें अपने पंजों में जकड़कर गरजते हुए नरक की ओर खींच रहा है। आसपास की सारी चीज़ें जैसे एक तेज़ी से भागती हुई लकीर में बदल गई हैं। ऐसा महसूस होता है कि आनेवाले पल में ही हम मर जाएंगे।

मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या! --मैं धीमे से कहता हूँ।

स्लेज की गति धीरे-धीरे कम हो जाती है। हवा का गरजना और स्लेज का गूँजना अब इतना भयानक नहीं लगता। हमारे दम में दम आता है और आख़िरकार हम नीचे पहुँच जाते हैं। नाद्या अधमरी-सी हो रही है। वह सफ़ेद पड़ गई है। उसकी साँसें बहुत धीमी-धीमी चल रही हैं... मैं उसकी स्लेज से उठने में मदद करता हूँ।

अब चाहे जो भी हो जाए मै कभी नहीं फिसलूंगी, हरगिज़ नहीं! आज तो मैं मरते-मरते बची हूँ। --मेरी ओर देखते हुए उसने कहा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में ख़ौफ़ का साया दिखाई दे रहा है। पर थोड़ी ही देर बाद वह सहज हो गई और मेरी ओर सवालिया निगाहों से देखने लगी। क्या उसने सचमुच वे शब्द सुने थे या उसे ऐसा बस महसूस हुआ था, सिर्फ़ हवा की गरज थी वह? मैं नाद्या के पास ही खड़ा हूँ, मैं सिगरेट पी रहा हूँ और अपने दस्ताने को ध्यान से देख रहा हूँ।

नाद्या मेरा हाथ अपने हाथ में ले लेती है और हम देर तक पहाड़ी के आसपास घूमते रहते हैं। यह पहेली उसको परेशान कर रही है। वे शब्द जो उसने पहाड़ी से नीचे फिसलते हुए सुने थे, सच में कहे गए थे या नहीं? यह बात वास्तव में हुई या नहीं। यह सच है या झूठ? अब यह सवाल उसके लिए स्वाभिमान का सवाल हो गया है. उसकी इज़्ज़त का सवाल हो गया है। जैसे उसकी ज़िन्दगी और उसके जीवन की ख़ुशी इस बात पर निर्भर करती है। यह बात उसके लिए महत्त्वपूर्ण है, दुनिया में शायद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। नाद्या मुझे अपनी अधीरता भरी उदास नज़रों से ताकती है, मानों मेरे अन्दर की बात भाँपना चाहती हो। मेरे सवालों का वह कोई असंगत-सा उत्तर देती है। वह इस इन्तज़ार में है कि मैं उससे फिर वही बात शुरू करूँ। मैं उसके चेहरे को ध्यान से देखता हूँ-- अरे, उसके प्यारे चेहरे पर ये कैसे भाव हैं? मैं देखता हूँ कि वह अपने आप से लड़ रही है, उसे मुझ से कुछ कहना है, वह कुछ पूछना चाहती है। लेकिन वह अपने ख़यालों को, अपनी भावनाओं को शब्दों के रूप में प्रकट नहीं कर पाती। वह झेंप रही है, वह डर रही है, उसकी अपनी ही ख़ुशी उसे तंग कर रही है...। --सुनिए! --मुझ से मुँह चुराते हुए वह कहती है। --क्या? --मैं पूछता हूँ। --चलिए, एक बार फिर फिसलें।

हम फिर से पहाड़ी के ऊपर चढ़ जाते हैं। मैं फिर से भय से सफ़ेद पड़ चुकी और काँपती हुई नाद्या को स्लेज पर बैठाता हूँ। हम फिर से भयानक गहराई की ओर फिसलते हैं। फिर से हवा की गरज़ और स्लेज की गूँज हमारे कानों को फाड़ती है और फिर जब शोर सबसे अधिक था मैं धीमी आवाज़ में कहता हूँ : --मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या।

नीचे पहुँचकर जब स्लेज रुक जाती है तो नाद्या एक नज़र पहले ऊपर की तरफ़ ढलान को देखती है जिससे हम अभी-अभी नीचे फिसले हैं, फिर दूसरी नज़र मेरे चेहरे पर डालती है। वह ध्यान से मेरी बेपरवाह और भावहीन आवाज़ को सुनती है। उसके चेहरे पर हैरानी है। न सिर्फ़ चेहरे पर बल्कि उसके सारे हाव-भाव से हैरानी झलकती है। वह चकित है और जैसे उसके चेहरे पर यह लिखा है-- क्या बात है? वे शब्द किसने कहे थे? शायद इसी ने? या हो सकता है मुझे बस ऐसा लगा हो, बस ऐसे ही वे शब्द सुनाई दिए हों?

उसकी परेशानी बढ़ जाती है कि वह इस सच्चाई से अनभिज्ञ है। यह अनभिज्ञता उसकी अधीरता को बढ़ाती है। मुझे उस पर तरस आ रहा है। बेचारी लड़की! वह मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं देती और नाक-भौंह चढ़ा लेती है। लगता है वह रोने ही वाली है। --घर चलें? -- मैं पूछता हूँ। --लेकिन मुझे... मुझे तो यहाँ फिसलने में ख़ूब मज़ा आ रहा है।

नाद्या मेरा हाथ अपने हाथ में ले लेती है और हम देर तक पहाड़ी के आसपास घूमते रहते हैं। यह पहेली उसको परेशान कर रही है। वे शब्द जो उसने पहाड़ी से नीचे फिसलते हुए सुने थे, सच में कहे गए थे या नहीं? यह बात वास्तव में हुई या नहीं। यह सच है या झूठ?

--वह शर्म से लाल होकर कहती है और फिर मुझ से अनुरोध करती है: --और क्यों न हम एक बार फिर फिसलें?

हुम... तो उसे यह फिसलना "अच्छा लगता है"। पर स्लेज पर बैठते हुए तो वह पहले की तरह ही भय से सफ़ेद दिखाई दे रही है और काँप रही है। उसे साँस लेना भी मुश्किल हो रहा है। लेकिन मैं अपने होंठों को रुमाल से पोंछकर धीरे से खाँसता हूँ और जब फिर से नीचे फिसलते हुए हम आधे रास्ते में पहुँच जाते हैं तो मैं एक बार फिर कहता हूँ : --मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या!

और यह पहेली पहेली ही रह जाती है। नाद्या चुप रहती है, वह कूछ सोचती है... मैं उसे उसके घर तक छोड़ने जाता हूँ। वह धीमे-धीमे क़दमों से चल रही है और इन्तज़ार कर रही है कि शायद मैं उससे कुछ कहूंगा। मैं यह नोट करता हूँ कि उसका दिल कैसे तड़प रहा है। लेकिन वह चुप रहने की कोशिश कर रही है और अपने मन की बात को अपने दिल में ही रखे हुए है। शायद वह सोच रही है।

दूसरे दिन मुझे उसका एक रुक्का मिलता है :"आज जब आप पहाड़ी पर फिसलने के लिए जाएँ तो मुझे अपने साथ ले लें। नाद्या।" उस दिन से हम दोनों रोज़ फिसलने के लिए पहाड़ी पर जाते हैं और स्लेज पर नीचे फिसलते हुए हर बार मैं धीमी आवाज़ में वे ही शब्द कहता हूँ :--मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या!

जल्दी ही नाद्या को इन शब्दों का नशा-सा हो जाता है, वैसा ही नशा जैसा शराब या मार्फ़ीन का नशा होता है। वह अब इन शब्दों की ख़ुमारी में रहने लगी है। हालाँकि उसे पहाड़ी से नीचे फिसलने में पहले की तरह डर लगता है लेकिन अब भय और ख़तरा मौहब्बत से भरे उन शब्दों में एक नया स्वाद पैदा करते हैं जो पहले की तरह उसके लिए एक पहेली बने हुए हैं और उसके दिल को तड़पाते हैं। उसका शक हम दो ही लोगों पर है-- मुझ पर और हवा पर। हम दोनों में से कौन उसके सामने अपनी भावना का इज़हार करता है, उसे पता नहीं। पर अब उसे इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। शराब चाहे किसी भी बर्तन से क्यों न पी जाए-- नशा तो वह उतना ही देती है। अचानक एक दिन दोपहर के समय मैं अकेला ही उस पहाड़ी पर जा पहुँचा। भीड़ के पीछे से मैंने देखा कि नाद्या उस ढलान के पास खड़ी है, उसकी आँखें मुझे ही तलाश रही हैं। फिर वह धीरे-धीरे पहाड़ी पर चढ़ने लगती है ...अकेले फिसलने में हालाँकि उसे डर लगता है, बहुत ज़्यादा डर! वह्बर्फ़ की तरह सफ़ेद पड़ चुकी है, वह काँप रही है, जैसे उसे फ़ाँसी पर चढ़ाया जा रहा हो। पर वह आगे ही आगे बढ़ती जा रही है, बिना झिझके, बिना रुके। शायद आख़िर उसने फ़ैसला कर ही लिया कि वह इस बार अकेली नीचे फिसल कर देखेगी कि "जब मैं अकेली होऊंगी तो क्या मुझे वे मीठे शब्द सुनाई देंगे या नहीं?" मैं देखता हूँ कि वह बेहद घबराई हुई भय से मुँह खोलकर स्लेज पर बैठ जाती है। वह अपनी आँखें बंद कर लेती है और जैसे जीवन से विदा लेकर नीचे की ओर फिसल पड़ती है... स्लेज के फिसलने की गूँज सुनाई पड़ रही है। नाद्या को वे शब्द सुनाई दिए या नहीं-- मुझे नहीं मालूम... मैं बस यह देखता हूँ कि वह बेहद थकी हुई और कमज़ोर-सी स्लेज से उठती है। मैं उसके चेहरे पर यह पढ़ सकता हूँ कि वह ख़ुद नहीं जानती

धीरे-धीरे सारी बर्फ़ पिघल जाती है। हमारा फिसलना बंद हो गया है और अब नाद्या उन शब्दों को नहीं सुन पाएगी। उससे वे शब्द कहने वाला भी अब कोई नहीं है : हवा ख़ामोश हो गई है और मैं यह शहर छोड़कर पितेरबुर्ग जाने वाला हूँ।

कि उसे कुछ सुनाई दिया या नहीं। नीचे फिसलते हुए उसे इतना डर लगा कि उसके लिए कुछ भी सुनना या समझना मुश्किल था।

फिर कुछ ही समय बाद वसन्त का मौसम आ गया। मार्च का महीना है... सूरज की किरंएं पहले से अधिक गरम हो गई हैं। हमारी बर्फ़ से ढकी वह सफ़ेद पहाड़ी भी काली पड़ गई है, उसकी चमक ख़त्म हो गई है। धीरे-धीरे सारी बर्फ़ पिघल जाती है। हमारा फिसलना बंद हो गया है और अब नाद्या उन शब्दों को नहीं सुन पाएगी। उससे वे शब्द कहने वाला भी अब कोई नहीं है : हवा ख़ामोश हो गई है और मैं यह शहर छोड़कर पितेरबुर्ग जाने वाला हूँ-- हो सकता है कि मैं हमेशा के लिए वहाँ चला जाऊंगा।

मेरे पितेरबुर्ग रवाना होने से शायद दो दिन पहले की बात है। संध्या समय मैं बगीचे में बैठा था। जिस मकान में नाद्या रहती है यह बगीचा उससे जुड़ा हुआ था और एक ऊँची बाड़ ही नाद्या के मकान को उस बगीचे से अलग करती थी। अभी भी मौसम में काफ़ी ठंड है, कहीं-कहीं बर्फ़ पड़ी दिखाई देती है, हरियाली अभी नहीं है लेकिन वसन्त की सुगन्ध महसूस होने लगी है। शाम को पक्षियों की चहचहाट सुनाई देने लगी है। मैं बाड़ के पास आ जाता हूँ और एक दरार में से नाद्या के घर की तरफ़ देखता हूँ। नाद्या बरामदे में खड़ी है और उदास नज़रों से आसमान की ओर ताक रही है। बसन्ती हवा उसके उदास फीके चेहरे को सहला रही है। यह हवा उसे उस हवा की याद दिलाती है जो तब पहाड़ी पर गरजा करती थी जब उसने वे शब्द सुने थे। उसका चेहरा और उदास हो जाता है, गाल पर आँसू ढुलकने लगते हैं... और बेचारी लड़की अपने हाथ इस तरह से आगे बढ़ाती है मानो वह उस हवा से यह प्रार्थना कर रही होकि वह एक बार फिर से उसके लिए वे शब्द दोहराए। और जब हवा का एक झोंका आता है तो मैं फिर धीमी आवाज़ में कहता हूँ : --मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या!

अचानक न जाने नाद्या को क्या हुआ! वह चौंककर मुस्कराने लगती है और हवा की ओर हाथ बढ़ाती है। वह बेहद ख़ुश है, बेहद सुखी, बेहद सुन्दर।

और मैं अपना सामान बांधने के लिए घर लौट आता हूँ...।

यह बहुत पहले की बात है। अब नाद्या की शादी हो चुकी है। उसने ख़ुद शादी का फ़ैसला किया या नहीं-- इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। उसका पति-- एक बड़ा अफ़सर है और उनके तीन बच्चे हैं। वह उस समय को आज भी नहीं भूल पाई है, जब हम फिसलने के लिए पहाड़ी पर जाया करते थे। हवा के वे शब्द उसे आज भी याद हैं, यह उसके जीवन की सबसे सुखद, हृदयस्पर्शी और ख़ूबसूरत याद है।

और अब, जब मैं प्रौढ़ हो चुका हूँ, मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि मैंने उससे वे शब्द क्यों कहे थे, किसलिए मैंने उसके साथ ऐसा मज़ाक किया था!...

अन्तोन पाव्लाविच चेख़व रूसी कथाकार और नाटककार थे। उनका जन्म दक्षिण रूस के तगानरोग में 29 जनवरी 1860 को हुआ और उनकी मृत्यु तपेदिक के कारण जरमनी के बेदेनवीलर नगर के एक स्वास्थ्यघर (स्पा) में 15 जुलाई 1904 को हुई। अपने छोटे से साहित्यिक जीवन में उन्होंने रूसी भाषा को चार कालजयी नाटक दिए जबकि उनकी कहानियाँ विश्व के समीक्षकों और आलोचकों में बहत सम्मान के साथ सराही जाती हैं। साभार: www.hindisamay.com

पाठक कहते हैं

हम नए कवियों / लेखकों से उनके लेखों / काव्य रचनाओं के नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट में पर्काशन हेतु योगदान की अपेक्षा करते हुए आमंत्रित करते हैं। सभी लेख / काव्य रचनाएँ नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट में निशुल्क पर्काशित होंगी।

-संपादक मंडल, नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट

हमें भवन ऑस्ट्रेलिया की ईमारत निर्माण परियोजना के लिए आर्थिक सहायता की तलाश है।

कृपया उदारता से दान दें।

नोट: हम अपने पाठकों की स्पष्टवादी, सरल राय आमंत्रित करते हैं।

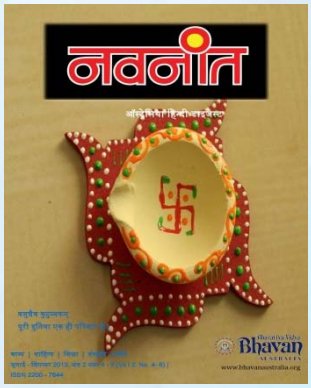

हमारे साथ विज्ञापन दें!

नवनीत ऑस्ट्रेलिया हिन्दी डाइजेस्ट में विज्ञापन देना आपकी कंपनी के ब्रांड के लिए सबसे अच्छा अवसर प्रदान करता है और यह आपके उत्पादों और / या सेवाओं का एक सांस्कृतिक और नैतिक संपादकीय वातावरण में प्रदर्शन करता है।

भवन ऑस्ट्रेलिया भारतीय परंपराओं को ऊँचा रखने और उसी समय बहुसंस्कृतिवाद एकीकरण को प्रोत्साहित करने का मंच है।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : info@bhavanaustralia.org

भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया राजपत्र

भारतीय विद्या भवन (*भवन*) एक गैर लाभ, गैर धार्मिक, गैर राजनीतिक, गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) है| भवन भारतीय परंपराओं को ऊपर उठाये हुए, उसी समय में आधुनिकता और बहुसंस्कृतिवाद की जरूरतों को पूरा करते हुए विश्व के शैक्षिक और सांस्कृतिक संबंधों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है| भवन का आदर्श, '*पूरी दुनिया एक ही परिवार है*' और इसका आदर्श वाक्य: '*महान विचारों को हर दिशा से हमारे पास आने दो*' हैं|

दुनिया भर में भवन के अन्य केन्द्रों की तरह, भवन ऑस्ट्रेलिया अंतर-सांस्कृतिक गतिविधियों की सुविधा प्रदान करता है और भारतीय संस्कृति की सही समझ, बहुसंस्कृतिवाद के लिए एक मंच प्रदान करता है और ऑस्ट्रेलिया में व्यक्तियों, सरकारों और सांस्कृतिक संस्थानों के बीच करीबी सांस्कृतिक संबंधों का पालन करता है|

अपने संविधान से व्युत्पन्न भवन ऑस्ट्रेलिया **राजपत्र** का कार्य है:

- जनता की शिक्षा अग्रिम करना, इनमें हैं:
    1. विश्व की संस्कृतियां (दोनों आध्यात्मिक और लौकिक),
    2. साहित्य, संगीत, नृत्य,
    3. कलाएं,
    4. दुनिया की भाषाएँ,
    5. दुनिया के दर्शनशास्त्र |
- ऑस्ट्रेलिया की बहुसांस्कृतिक समाज के सतत विकास के लिए संस्कृतियों की विविधता के योगदान के बारे में जागरूकता को बढ़ावा|
- समझ और व्यापक रूप से विविध विरासत के ऑस्ट्रेलियाई लोगों की सांस्कृतिक, भाषाई और जातीय विविधता की स्वीकृति को बढ़ावा|
- भवन की वस्तुओं को बढ़ावा देने या अधिकृत रूप में शिक्षा अग्रिम करने के लिए संस्कृत, अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में पुस्तकों, पत्रिकाओं और नियतकालिक पत्रिकाओं, वृत्तचित्रों को संपादित, प्रकाशित और जारी करना|
- भवन के हित में अनुसंधान अध्ययन का पालन करना और शुरू करना और किसी भी अनुसंधान को जो कि शुरू किया गया है, के परिणाम को मुद्रित और प्रकाशित करना| www.bhavanaustralia.org

भवन के अस्तित्व के अधिकार का परीक्षण

भवन के अस्तित्व के अधिकार का परीक्षण है कि क्या वो जो विभिन्न क्षेत्रों में और विभिन्न स्थानों में इसके लिए काम करते हैं और जो इसके कई संस्थानों में अध्ययन करते हैं, वे अपने व्यक्तिगत जीवन में एक मिशन की भावना विकसित कर सकें, चाहे एक छोटे माप में, जो उन्हें मौलिक मूल्यों का अनुवाद करने में सक्ष्म बनाएगा|

एक संस्कृति की रचनात्मक जीवन शक्ति इसमें होती है: कि क्या जो इससे सम्बंधित हैं उनमें 'सर्वश्रेष्ट', हालांकि उनकी संख्या चाहे कितनी कम हो, हमारे चिरयुवा संस्कृति के मौलिक मूल्यों तक जीने में आत्म-पूर्ति पाते हों|

यह एहसास किया जाना चाहिए कि दुनिया का इतिहास उन पुरुषों की एक कहानी है जिन्हें खुद में और अपने मिशन में विश्वास था| जब एक उम्र विश्वास के ऐसे पुरुषों का उत्पादन नहीं करती तो इसकी संस्कृति अपने विलुप्त होने के रास्ते पर है| इसलिए भवन की असली ताकत इसकी अपनी इमारतों या संस्थाओं की संख्या जो यह आयोजित करती है, में इतनी ज्यादा नहीं होगी, ना ही इसकी अपनी संपत्ति की मात्रा और बजट में, और इसकी अपनी बढ़ती प्रकाशन, सांस्कृतिक और शैक्षिक गतिविधियों में भी नहीं होगी| यह इसके मानद और वृत्तिकाग्राही, समर्पित कार्यकर्ताओं के चरित्र, विनम्रता, निस्वार्थता और समर्पित काम में होगी| उस अदृश्य दबाव को केवल जो अकेला मानव प्रकृति को रूपांतरित कर सकता है, को खेल में लाते हुए केवल वे अकेले पुनर्योजी प्रभावों को रिहा कर सकते हैं|

महात्मा गाँधी कहते हैं

पहले वो आप पर ध्यान नहीं देंगे, फिर वो आप पर हँसेंगे, फिर वो आप से लड़ेंगे, और तब आप जीत जायेंगे।

समाज में से धर्म को निकाल फेंकने का प्रयत्न बाँझ के पुत्र पैदा करने जितना ही निष्फल है और अगर कहीं सफल हो जाय तो समाज का उसमें नाश है।

यदि शारीरिक उपवास के साथ-साथ मन का उपवास न हो तो वह दम्भपूर्ण और हानिकारक हो सकता है।

अहिंसात्मक युद्ध में अगर थोड़े भी मर मिटने वाले लड़ाके मिलेंगे तो वे करोड़ों की लाज रखेंगे और उनमें प्राण फूकेंगे। अगर यह मेरा स्वप्न है, तो भी मेरे लिए मधुर है।

सच्चा अर्थशास्त्र तो न्याय बुद्धि पर आधारित अर्थशास्त्र है।

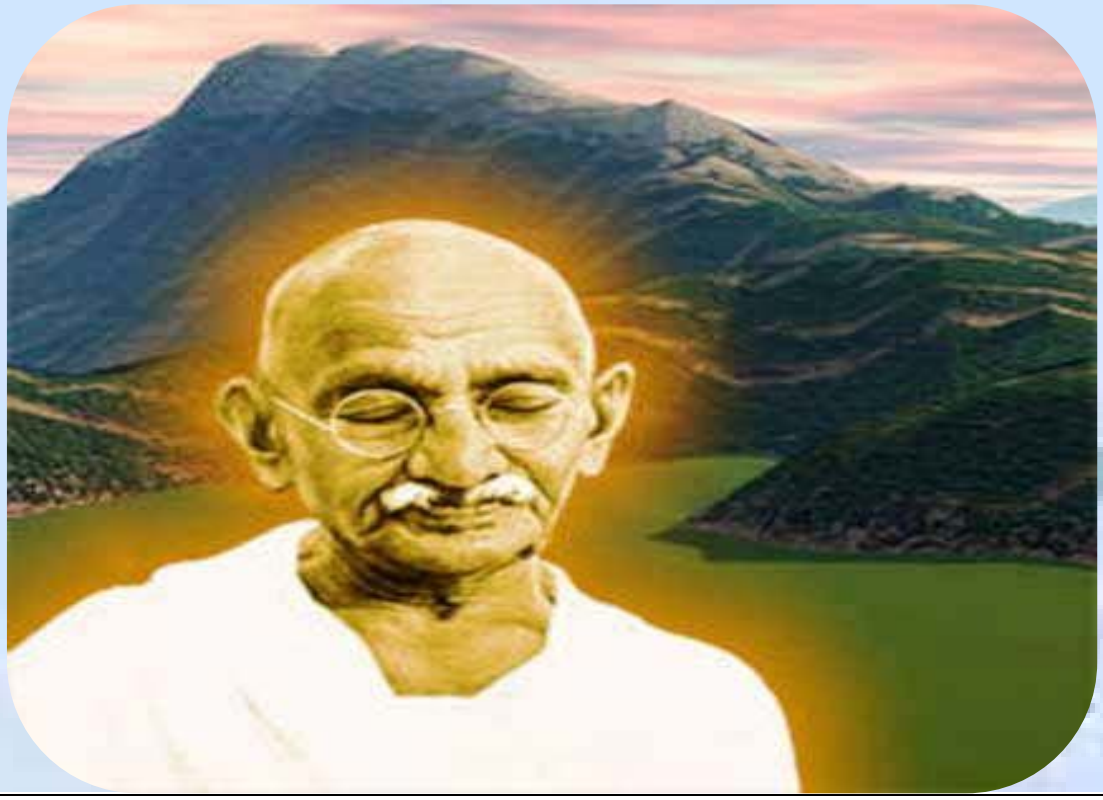

taxation & business guru

Taxation Guru - using their knowledge and expertise to stay ahead of the every changing taxation legislation.

Whether you're a company, partnership, trust or sole trader, you need help with Super, Salary packages, Fringe benefits, Investments and deductions.

Call the Taxation Guru, the power to help you make the right decisions.

We endeavour to take the burden off your shoulders and make life easy by providing a broad range of tax related services.

Contact us at:
Suite 100, Level 4, 515 Kent Street, Sydney 2000
t: 1300 GURU4U (487848) & +612 9267 9255
e: gambhir@bmgw.com www.taxationguru.com.au

THE TAX INSTITUTE

CHARTERED TAX ADVISER

BMG GROUP

www.taxationguru.com.au

Holi Mahotsav

Indian Festival of colours, friendship and harmony

21 – 23 March 2014

Darling Harbour, Sydney

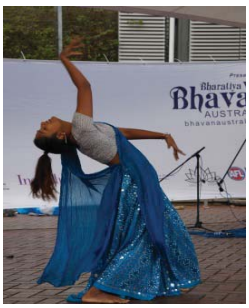

NSW GOVERNMENT | COMMUNITY RELATIONS COMMISSION For a multicultural NSW | Incredible !ndia | NSW GOVERNMENT Planning & Infrastructure Sydney Harbour Foreshore Authority | CITY OF SYDNEY 2030 | ISKCON SYDNEY

Friday 21 March:
11:00am - 2:00pm & 5:30pm - 7:00pm
Schools Day / Youth Day

Saturday Street Procession starts at Martin Place and finishes in Darling Harbour passing through Market, George and Liverpool Street.

Saturday 22 & Sunday 23 March:
11:00am - 7:00pm
Cultural performances throughout both days
Food and Merchandize Stalls and Marquees
Colour throwing sessions

- ***Sponsorships Open***
- ***Stall Booking Open***
- ***Expression of interest for folk and traditional cultural performances Open***

***No Guerrilla Marketing will be allowed. Only stall holders shall be allowed to distribute any material from their stalls only.**

Bharatiya Vidya Bhavan AUSTRALIA

www.holimahotsav.com.au
1300 BHAVAN (1300 242 826)
info@holimahotsav.com.au

Free for everyone.... COME and ENJOY